CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत : पूर्व और पश्चिम

ालय
ाराणसी-५
155

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अ० ३/५५
आम्नाय-ग्रन्थालयं,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

श्रीराम
17th Oct 73

from Mrs. George of
Max Mueller Bhavan

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत : पूर्व और पश्चिम

आम्नाय–ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, नरौली
वाराणसी-5

संगीत : पूर्व और पश्चिम

विचार-निबन्ध

लेखक : प्रौ० एच० जे० क्यॉलरॉयटर
मूल जर्मन से अनु० : डॉ० संयुक्ता
भूमिका : पं० विनयचन्द्र

अक्षर प्रकाशन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© एंच० जे० क्वॉलरॉयटर, ७१

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, कर्णघंटा
वाराणसी-5

प्रकाशक
अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
२/३६, अन्सारी रोड,
दरियागंज, दिल्ली-६
संस्करण
प्रथम १९७१
मुद्रक
जयभारत कम्पोजिंग एजेंसी
द्वारा
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस,
मौजपुर में मुद्रित।
मूल्य
आठ रुपये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि,
वाराणसी-

भूमिका	७
आधुनिक युग में संगीत का योग	६
संगीत शैलियों का इतिहास	१३
भारतीय और पाश्चात्य कला	२६
भारतीय संगीत में ध्वनि और मौन	३२
भारतीय और पाश्चात्य संगीत में चेतना	३७
संगीत का परिचय	४७
संगीत सौंदर्य शास्त्र के नये आधार	५७
नैवेद्य संगीत	७२
सिंफनी समस्वर-संगीतिका	७८
नाट्य-संगीतिका : ऑपेरा	८३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

पाश्चात्य संगीत-क्षेत्र में डॉ० एच० जे० कयॉलरॉयटर का विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। पाश्चात्य संगीत के ऐतिहासिक और सैद्धांतिक पक्ष का उन्होंने गहरा अध्ययन किया है। कलाकार के रूप में भी उनकी बहुत अच्छी ख्याति है। बांसुरी-वादकों में उनका नाम अग्रगण्य है। विलक्षण सर्जन प्रतिमा संपन्न होने के कारण उच्चकोटि के कंपोजर के रूप में उनका बहुत सम्मान है। वाद्यवृन्द के कंडक्टर के नाते भी वे लोकप्रिय हैं। सबसे बड़ी बात है कि पाश्चात्य संगीत पर इतना असाधारण अधिकार होने के साथ ही भारतीय संगीत में भी उन्हें विशेष अनुराग और रुचि है। भारतीय संगीत और विशेषतया उसकी आध्यात्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठ-भूमि का गंभीर विचार और मनन उन्होंने किया है। वे विलक्षण बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। मेक्समुलर भवन दिल्ली के निदेशक के रूप मे उनके कार्यकाल के दौरान मुझे उनसे निकट संपर्क में आने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा उनके स्वभाव की विशेषताओं से सुपरिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ ।

प्रस्तुत ग्रन्थ उनके दीर्घकालीन चिंतन और अनुसंधान का प्रतीक और फल है। चेतना की विभिन्न वृत्तियों की अभिव्यंजना के रूप में भारतीय और पाश्चात्य संगीत के मूलभूत अन्तर का उन्होंने सूक्ष्म विवेचन किया है। इसी संदर्भ में उन्होंने स्पष्ट किया है कि क्यों भारतीय संगीत प्राय: स्वरप्रस्तार(melody)पर आधारित है तथा किस प्रकार पाश्चात्य संगीत में स्वर संवाद(Harmony) के तत्व का समानेश तथा विकास हुआ है।

आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण विश्व की सभी संस्कृतियों के निकटतर संपर्क में आने तथा पारस्परिक आदान-प्रदान की संभावना बहुत बढ़ गयी हैं। आज पाश्चात्य संगीत के श्रेष्ठतम कलाकारों को भारत में और भारतीय कलाकारों की कला का रसास्वादन करने की सुविधा विश्व के अधिकांश भागों में सुलभ है। क्या इस निकट स[illegible] के फलस्वरूप दोनों शैलियों को मिलाकर एक नयी शैली का प्रादुर्भाव होना अभीष्ट या संभव है ? यह एक अत्यन्त विवादास्पद विषय है। डॉ० क्यॉलरॉयटर इसके पक्ष में हैं। न केवल वे इसके समर्थक हैं, वल्कि उन्होंने सिंफनीऑर्केस्ट्रा की अपनी कुछ रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग स्वयं किये हैं। उनसे सहमत न रहने वाले भी यह तो अवश्य मानेंगे कि ये अभिनव क्रान्तिकारी परीक्षण उनकी विलक्षण प्रतिभा और सूझ-बूझ के परिचायक हैं।

हिन्दी में संगीत विषयक ग्रन्थों की कमी है । विशेषतया ऐसे ग्रन्थ तो दुर्लभ हैं जिनमें भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही पद्धतियों की जानकारी हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि संगीत प्रेमी इस प्रकाशन का समुचित स्वागत करेंगे।

— विनयचन्द्र मौद्गल्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधुनिक युग में संगीत का योग
एक खुला ख़त

तथाकथित नव-संगीत का अकेलापन, उसका सामाजिक अलगाव एक ऐसी समस्या है, जो मेरे मन को बराबर कुरेदती है। मैं समझता हूँ कि संगीत के 'व्यवसाय' से सम्बद्ध हम सभी को, संगीत-साधना में अन्तर्निहित सामाजिक दायित्वों की समस्या पर अधिक ध्यान देना चाहिए। यहां 'व्यवसाय' शब्द का प्रयोग मैंने जानबूझ कर किया है, क्योंकि हमारा सांस्कृतिक-जीवन असंदिग्ध रूप से उत्तरोत्तर 'व्यवसाय' बनता जा रहा है। यह ध्यान देना इसलिए भी आवश्यक हो गया है कि तकनीकी सिद्धि और संगीत-रचना के वैयक्तिक ढंग से सम्बन्धित प्रश्नों पर जो अन्तहीन बहस चल रही है, वह हमें किसी किनारे नहीं लगाती। जबकि ये प्रश्न ऐसे हैं जिन्हें हर रचनाकार को अन्ततः स्वयं सुलझाना है।

आज जबकि संसार में एक नयी व्यवस्था और जीवन की एक नयी पद्धति का निर्माण हो रहा है, आदमी और संगीत के बीच का सम्बन्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे और भी महत्व का प्रतीत होता है। और हमें इस तथ्य को बराबर जहन में रखना है कि कला के रूप में संगीत की उपयोगिता तभी तक है जब तक वह मनुष्य की सेवा करता है। जब तक संगीत का प्रयोग मनुष्यों को आपस में जोड़ने तथा उनमें सम्पर्क स्थापित करने के लिए होता है। वह सभ्यता के विकास में सहायक है।

आज की दुनिया तकनीकी दुनिया है, या यों कहिए कि यह उत्तरोत्तर आदमी की अपनी सृष्टि है, एक बनावटी दुनिया। इस दुनिया की सहज प्रवृत्ति सब लहजों में सोचती है, इसके साथ ही इसका रुझान सार्वभौमिकता की ओर भी होने के कारण यह एकीकरण की दुनिया है। इससे मेरा आशय एक ऐसी दुनिया से है जो हमारे सामाजिक जीवन के पृथक् और स्वतंत्र दिखाई पड़ने वाले हिस्सों को आर्थिक कला एवं विज्ञान के क्षेत्र में तो मिलाने का प्रयत्न कर रही है, साथ ही राजनीति तथा धर्म के क्षेत्र में भी मिलाकर एक करने की कोशिश में है, शायद यह एक नयी, सार्वभौम मानवता की तैयारी है...अगर आदमी को सम्भावित दुर्घटनाओं से बचते हुए इस तकनीकी दुनिया को मिलाकर रखने में सफल होना है, और अगर उसे स्वयंचालित यन्त्रीकरण की प्रक्रिया से सहज ही उत्पन्न परवशता की स्थिति पर काबू पाना है, और संक्रान्तिकाल से जुड़े संघर्ष में सफल होना है तो उन आदर्शों से हमारा परिचय बहुत जरूरी है।

इसलिए मुझे लगता है कि आज के कलाकार का पहला काम यह होना चाहिए कि वह आज के आदमी की चेतना में अमर, सदा से स्वीकृत सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिए उनकी व्याख्या इस नयी व्यवस्था, इस नये जीवन के संदर्भ में करे, जिसमें अनेकानेक परम्पराओं यहाँ तक कि सत्य की वैधता को भी चुनौती दी जा रही है। ऐसा करके कलाकार आज की स्थिति और काल के बोध में सहायक होगा।

आज के यथार्थ के सभी पहलुओं का पुनर्मूल्यांकन आरम्भ हो चुका है; और इस नयी तकनीकी दुनिया की उपयोगितावादी मांगों के अनुरूप स्वयं को ढाल लेने की अपनी क्षमता के कारण, मेरे खयाल से, अधिकांश कलाओं ने पुनर्मूल्यांकन की इस प्रक्रिया में एकहद तक काफी हिस्सा लिया है। व्यवसाय, औद्योगिक उत्पादनों के डिजाइन और मुद्रण-कला के विकास में दृश्य-कलाओं के प्रभाव की ओर मेरा ध्यान खासतौर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से जाता है। मेरा ध्यान अपनी प्रकृति और रुझान के बावजूद, साहित्य एवं रंगमंच में काफी दूर तक दिखाई पड़ने वाली 'प्रतिवद्धता की भावना' की ओर भी जाता है।

संगीत के मामले में स्थिति बिल्कुल दूसरी है। संगीत की दुनिया आज भी अहम् की अति-अभिव्यक्ति से उद्भूत बुर्जुआ-कंसर्ट की दुनिया है, कला के प्रति जिसका दृष्टिकोण महज़ आनन्दवादी है। एक ओर संगीत जन-जन की समानता का साधन और उसकी अभिव्यक्ति है, दूसरी ओर संगीत मानव के सतत् अलगाव का लक्ष्य है। संगीत के लिए कहा जाता है कि वह शून्य है, तनाव और निष्कर्ष से रहित है और इसने एक तरह की स्वायत्तता प्राप्त करली है। यह प्रतीक और प्रतीयमान वैधता, हमारे 'सांस्कृतिक' उद्योग के बाहुल्य पक्ष पर अधिक बल, हमारे युग की अपनी एक विशेषता है।

परन्तु मैं साधारणतया इस युग के संगीत की स्थिति का आलोचक हूँ और उसे समस्यात्मक मानता हूँ। इसके साथ ही मुझे यह भी मालूम है कि अभी हाल में भी ऐसी संगीत-रचनाएं हुई हैं जिन्हें हमारे युग की प्रामाणिक अभिव्यक्ति माना जाता है, जो सही अर्थों में सूचनाप्रद हैं और जो नये सौंदर्य-मूल्यों के निर्माण और प्रस्तुतीकरण का मार्ग दिखा सकती हैं। सब कुछ मिलाकर मुझे लगता है कि संगीत के क्षेत्र में केवल जैज़ ही ऐसा है, जिसने नयी दुनिया और नयी जीवन-व्यवस्था की सामाजिक स्थितियों को निगाह में रखा है और जो इस युग की सांस्कृतिक प्रक्रिया में स्थान बनाने में सफल हुआ है।

हमारे जीवन में यंत्रीकरण की उत्तरोत्तर वृद्धि संस्कृति के हितों के प्रतिकूल पड़ेगी, और इसमें कोई सन्देह नहीं कि संगीत-सभाओं के रूप में बुर्जुआ-कंसर्ट इस प्रक्रिया का अधिकाधिक शिकार होता जायेगा। यही यंत्रीकरण अंततः ऐसी शक्तियों को जाग्रत करेगा जो संगीत को उत्कृष्ट बनायेगी। कला और संस्कृति जो सामाजिक दृष्टिकोण से अभी तक परम्परा के साथ नत्थी हैं, एक दिन अवश्य ही यंत्र-युग के मानव की अनुभूतियों को मूर्त करने में सफल होंगी।

संभवतः हमें संगीत को एक भाषा के रूप में, सम्प्रेषण के सक्रिय माध्यम के रूप में, और स्वर-लिपि को संगीत के रूप में अभिव्यक्त सौंदर्य-रूपों के एक प्रकार के रूप में और भी मान्यता देनी होगी। और तब संगीत तकनीकी या कहिए बनावटी दुनिया की जटिल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताओं तथा उसके आध्यात्मिक सिद्धान्तों को हमारे चेतन के स्तर तक लाने में सहायक होगा।

परन्तु मेरा विश्वास है कि हमारा मुख्य काम इस तकनीकी दुनिया में यथार्थ के क्षितिज का विस्तार करना है और यह काम उसे नकार कर नहीं किया जा सकता। संगीत की स्वायत्तता में मेरा विश्वास नहीं है। मेरा तो विश्वास है हमारे समग्र सांस्कृतिक जीवन में संगीत की पूरक सहकारिता में, जीवन के यंत्रीकरण और यांत्रिक प्रगतियों को अपने ढंग से उद्देश्य प्रदान करने के उसके मिशन में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत-शैलियों का इतिहास: मध्ययुग से वर्तमान काल तक

संगीत का इतिहास संगीत-शैलियों का इतिहास है। अन्य कलाओं के इतिहास की भांति यह भी कुछ स्थायी लक्षणों वाली अभिव्यक्तियों की एक श्रृंखला के रूप में है। इन अभिव्यक्तियों को ही ऐतिहासिक स्थिरांक कहते हैं। इसके अतिरिक्त संगीत की रचना-पद्धति में सतत परिवर्तन के तत्व भी विद्यमान हैं, जिनके कारण प्रारंभिक काल का संगीत आश्चर्यजनक रूप से वास्तविक प्रतीत होता है। दूसरी ओर वह इतना अजनबी और पराया लगता है कि उसे समझ पाना ही कठिन हो गया है।

अलग-अलग संगीतशास्त्रीय तथ्यों का वर्गीकरण करते समय कभी तो घनिष्ठ नैमित्तिक बंधन और आंतरिक सम्बन्धों से समुत्पन्न वर्ग-बंधन सामने आते हैं और कभी नवीन और भिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों के उद्भव के कारण अकस्मात क्रम-भंग हो जाता है। इससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत-धाराओं के संबंध-सूत्र स्पष्ट हो जाते हैं और निर्धारित वर्गों के अंतर्गत समाविष्ट न हो सकने वाली धाराओं का वर्गीकरण समरूपी समूहों में किया जा सकता है।

शैली उन संयोजनकारी और विशिष्टतापूर्ण लक्षणों का समुच्चय है जो किसी कलात्मक कृति को किसी विशिष्ट समूह के साथ संवद्ध करते अथवा किसी अन्य समूह से उसकी पृथकता का वोध कराते हैं।

इसी आधार पर राष्ट्रीय शैली, युग-शैली, व्यक्तिगत शैली जैसे पारिभाषिक शब्दों का जन्म हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टि से इनमें सवसे अधिक दिलचस्प शव्द, युग-शैली है। यहां यह वात स्मरण रखने योग्य है कि इन शैलियों के काल में कोई निर्धारित क्रम नहीं होता, वे एक-दूसरे से टकराती और परस्पर अतिक्रमण भी करती हैं, उदाहरणार्थ—जिस समय प्राचीन जर्मन शैली ह्रासोन्मुख थी उस समय पुनर्जागरण शैली अपनी चरमावस्था पर थी और वैराक शैली का उदय हो रहा था। यह भी हो सकता है कि किसी विशिष्ट शैली का उदय और अस्त एक देश में दूसरे देशों की अपेक्षा पहले या देर से हो।

प्रत्येक संगीत-शैली एक ऐतिहासिक स्थिति का निरूपण करती है। वह चेतना की एक विशिष्ट प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति होती है और उसमें एक युग अथवा समाज, एक वर्ग अथवा व्यक्ति के चिंतन तथा उसकी भावनाओं का प्रतिविंव मिलता है।

शैली मनुष्य की स्वयं की अभिव्यक्ति है।

ईसाई धर्म के परवर्ती काल में विकसित होने वाली विविध संगीत-शैलियों को दो प्रमुख युगों में वांटा जा सकता है। ये युग अपने आप में पूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरे युग का उल्लेख भी किया जा सकता है। यह युग अभी अपनी प्रारंभिक अवस्था में है। पहला युग पुनर्जागरण काल तक चला और दूसरा लगभग समाप्त हो चुका है, वह वर्तमान काल तक चला।

विभिन्न शैलियों में से प्रत्येक को एक ऐसा विशिष्ट नाम दिया जाता है जिससे यह वोध होता है कि उस शैली के प्रचलनकाल में संगीत का सामाजिक जीवन में क्या स्थान था, तथा समाज में उसका क्या प्रयोजन माना गया था, अर्थात् व्यक्ति के साथ उसका क्या सम्वन्ध था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले युग को मध्यकाल कहा जाता है तथा इसमें तत्कालीन लैटिन और आदि-जरमन शैलियों का समावेश होता है। यह युग पुनर्जागरण काल तक चला। इस काल में संगीत ही नहीं सभी कलाओं का काम ईश्वर और मनुष्य के संवंध की अभिव्यक्ति करना था। वे धार्मिक कृत्य थे और उनका प्रयोजन ईश्वर के साथ मनुष्य का संवाद स्थापित करना था।

ईश्वर मध्ययुग का महान और अनुपम विषय-सूत्र था, तथा अन्य कलाओं की भाँति संगीत भी ईश्वर और मनुष्य के पारस्परिक और संवादी संबंध की अभिव्यक्ति था। वह प्रतीकों की एक ऐसी सृष्टि बन गया था जिसमें दोनों तत्व (ईश्वर और मनुष्य) एक-दूसरे के पूरक थे तथा मानसिक अनुभूतियां उन दोनों के बीच पूर्ण एकता अथवा तादात्म्य की स्थापना करती थीं।

मध्यकाल में मनुष्य पूर्णतया अपने आप में समाया हुआ न था वह प्रकृति के साथ इतनी गहराई के साथ जुड़ा हुआ था जिसकी कल्पना भी पश्चिमी जगत के आधुनिक व्यक्ति को नहीं हो सकती। उस जमाने में आत्मा और प्रकृति के बीच में सामंजस्य की स्थापना कर ली गयी थी तथा ईश्वर और मनुष्य एक-दूसरे के पूरक वन गये थे। वे दोनों मिलकर पूर्णता का स्रजन करते थे।

वह धर्माधारित समाज था। वह सजायी हुई पांडुलिपि, सोने की पृष्ठभूमि, मध्यकालीन चित्रकला और संगीत का मध्यकालीन लैटिन-शैली का जगत था।

लैटिन शैली का संगीत अत्यंत सरल है, वह सही मायने में प्रारम्भिक है। वह स्थूल संगीत है, उसमें साज-सज्जा का स्थान नहीं है। उसके सुरीले पद उन वृहत लैटिन गिरजाघरों की याद दिलाते हैं जिनके लिए उनकी रचना की गयी थी। लैटिन संगीत एक-आयामी संगीत है जिसकी ध्वनियों का संयोजन और सम्मिश्रण लम्बे और उत्तरोत्तर क्रम से अर्थात् सुरीलेपन से किया गया है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से इस संगीत का वल व्यक्तिगत परक न होकर निर्वयक्तिक परक है। यहां तक कि रचनाकार का नाम भी नहीं दिया गया है। लैटिन संगीत अनाम संगीत है, वह 'मैं' पर नहीं, 'हम' पर निर्भर है अर्थात् उसने सामूहिक अस्तित्व यानी समाज के गुणात्मक स्वरूप को अधिक महत्व दिया है। समवेत-संगीत में इस तथ्य की अभिव्यक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुई है।

आत्म-चेतना की अनुपस्थिति के लिए यह आवश्यक है कि अंतराल की चेतना लुप्त हो जाये। इसका कारण यह है कि अंतराल को मूर्त रूप देने और उसकी विशेषता वताने के लिए एक ऐसे अहं की आवश्यकता है जो अपने वारे में चेतन हो तथा अन्तराल के साथ अपना संवंध जोड़ सके। मध्यकालीन व्यक्ति अन्तराल के प्रति तटस्थ और उदासीन था। उसकी चेतना अन्तराल-निरूपण की अवहेलना करती थी अतः उसका संगीत समतल और सपाट है। इसी कारण लैटिन संगीत तथा सामान्यतः समूचे पाश्चात्य संगीत की प्रथम धुन अर्थात् ग्रिगोरियन-धुन (चान्ट) को सादी धुन अथवा सादा संगीत भी कहा जाता है। वह एक सपाट धुन है। धुनों की अत्यन्त सादगी, उनमें साज-सज्जा और प्रायः संघर्ष का अभाव तथा उनके वृहत स्वरूप को देखकर लैटिन गिरजाघरों की शैली याद आती है। इन गिरजाघरों में गहरा अन्तराल अथवा आंतरिक स्थान नहीं है, उसके स्थान पर अन्तर्निहित सार्वभौम अन्तराल होता है। यह जगत के भीतर अभिन्न रूप से विद्यमान होने की स्थिति है, उससे भिन्नता का वोध नहीं होता। लेकिन धीरे-धीरे ईसाई धर्म की धीमी प्रगति के साथ-साथ आत्मा और प्रकृति तथा ईश्वर और मनुष्य की एकता की अवस्था अधिकाधिक अव्यवस्थित होती चली गयी और आदि गेय शैली के गिरजाघरों की सृष्टि हुई। उसकी सजावट, उसकी ऊँचाई, गतिशील रेखाएं और पारदर्शी प्रकाश-व्यवस्था पाश्चात्य मनुष्य की एक नयी चेतना के प्रति जागृति और उसके सांस्कृतिक इतिहास में एक नये युग के उदय की प्रतीक है।

आदि गेय-संगीत में ऐसा प्रतीत होता है मानो लैटिन संगीत की भारी, शानदार और विराट ध्वनि, प्रवहमान, दिशावद्ध और सुरीले संगीत की जरदोजी में विलीन हो गई हो। जो पहले निष्क्रिय और अचल प्रतीत होता था, वह अव एक सक्रियता से आंदोलित हो उठा।

दूसरे युग में, पुनर्जागरण, वैराक, अथवा शास्त्रीयता और स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) की संगीत-शैलियों और उनकी चरम अवस्थाओं —प्रभाववाद और अभिव्यंजनावाद का समावेश होता है। तव कला, मनुष्य और ईश्वर अर्थात् दैवी-शक्ति के वीच सम्वन्ध स्थापित करने की चेष्टा न थी, वल्कि उसका प्रयोजन मनुष्यों के तथा मनुष्य और वाह्य सृष्टि के वीच सम्वन्ध जोड़ना था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह युग पहले के धर्म निर्भर युग के मुकावले मनुष्य-केन्द्रित अथवा मानवतावादी माना जा सकता है। इस युग का प्रथम शैली-काल पुनर्जागरण का काल है। ईश्वर और मनुष्य की एकता को इस काल में पहली वार धक्का लगा था। मूल-स्वर मनुष्य की स्वतन्त्रता था तथा यहां से पाश्चात्य चिंतन का विकास तर्कसंगत और भौतिक आधारों पर शुरू हुआ।

शास्त्रीय कला से पहले के युग में एक ऐसी सामूहिक चेतना व्याप्त थी जो वहुत वड़ी सीमा तक उत्तरोत्तर क्रम में वंधी हुई, परम्पराओं से जकड़ी हुई और यंत्रवत अवैयक्तिक वन चुकी थी। इसके विपरीत यूनानियों की समूह-चेतना में कुछ सीमा तक व्यक्तिवाद के दर्शन हो चुके थे। मध्यकाल के उत्तर युग में, यानी लगभग तेरहवीं शताब्दी के मव्य में मनुष्य अपने शरीर के वारे में ही नहीं, वरन उसमें अन्तर्निहित अहं के वारे में भी सचेत होने लगा। वह अव केवल आदर्श प्रतिमा अथवा आदर्श प्रकार का कैज़ार, दार्शनिक अथवा कवि नहीं रह गया था, वल्कि यानफ़ान इयुक के उस चित्र जैसा वनता जा रहा था जिसमें मनुष्य की अभिव्यक्ति एक हँसने, चिल्लाने, पीड़ा महसूस करने और प्रेम करने वाले प्राणी के रूप में होती है।

इसी प्रकार संगीत भी मनुष्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम वन गया। शुरू में फ्रांसीसी चारणों तथा प्राचीन जर्मन-गायकों का युग था। १२५० से वे अपने गीतिमय मानवीय अहं-काव्य के द्वारा मनुष्य की आत्मा का दिग्दर्शन करा रहे थे। उन्होंने मनुष्य और प्रकृति की एकता को लेकर संशय प्रकट किया। उसके वाद पुनर्जागरण काल में इतालवी ग्राम्य गीत आया जिसने मनुष्य और उसके अन्तर्बाह्य अनुभवों को अपना विषय वनाया, उसकी एक संगीतमय समीक्षा प्रस्तुत की। लैटिन तथा आदि-जर्मन संगीत के निरपेक्ष, तथ्यपरक, तटस्थ तथा प्रायः अमूर्त पंचम और चतुर्थ स्वर अतीत की चीज वन गये तथा उनका स्थान अव सापेक्ष, वैयक्तिक, निजी रंग लिये हुए ऐंद्रिक तृतीय स्वर ने ले लिया। यह वह संगीत था जिसने मनुष्य और उसकी आत्मा की अभिव्यक्ति की चेष्टा की।

मनुष्य को विषय-वस्तु मान लेने पर उसका जगत और परिवेश भी विषयवस्तु का रूप ले लेता है। इस प्रकार फान इयुक वन्धुओं ने दृश्य-भूमिका नामक चित्रांकन पद्धति को अधिकाधिक स्पष्ट और प्रभावशाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने अन्तराल के उस स्वरूप की अभिव्यक्ति की जो अमूर्त को मूर्त स्वरूप देने वाला और तीन आयामी है।

धीरे-धीरे अन्तराल को चेतना के धरातल तक लाया गया। तथा वही उस युग का सबसे अधिक महत्वपूर्ण चिंतन-व्यापार बन गया। 'कोपेरनिकुस' ने सीमित भूकेंद्रित अन्तरिक्ष के सिद्धान्त का विस्फोट किया और सूर्यकेंद्रित अन्तरिक्ष की खोज की। कोलंबस ने चारों ओर फैले समुद्रों की सीमाओं का अतिक्रमण करके नया भूप्रदेश खोज निकाला। प्रथम महान शरीर-रचना शास्त्री फेजाले ने सीसे के सिद्धान्तों का विस्फोट करके शरीर के अन्तवर्ती अन्तराल की खोज की। हार्वे ने हिप्पोक्रेटिव के प्रचलित त्रिदोष—कफ, वात, पित्त चिकित्सा-सिद्धांत का विस्फोट करके रक्त-संचार के नियम की खोज की। केप्लर ने ब्रह्मांड के मंडलाकार और दो आयामी होने के प्राचीन सिद्धान्त का खंडन किया और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि ग्रहों की गति वर्तुलात्मक न होकर अंडाकार होती है और वे एक दूसरे के मार्ग को काट कर गुजरते हैं। और गेलिलाई ने टेलीस्कोप का आविष्कार कर के अंतरिक्ष में मनुष्य के प्रवेश का मार्ग खोल दिया।

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के संगम काल में मनुष्य के हृदय में मर्यादाएं तोड़ कर दिशा, देश, अंतरिक्ष और अंतराल की विजय की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई। इस आकांक्षा की अभिव्यंजना लियोनार्दो दा विंची के दृश्यफलक-विस्तार में ही नहीं, बल्कि चर्च की दीवारों पर चित्रांकन के स्थान पर चौखटे में कसे हुए फलक पर चित्रांकन (अर्थात् भित्ति चित्रांकन के बजाय तेल-चित्रांकन) की शुरुआत में भी हुई।

समस्त क्षेत्रों में इस अंतराल और अंतराल विषयक चेतना पर बहुत अधिक बल दिया गया। इस प्रवृत्ति की अभिव्यंजना अंतराल के विभाजन में हुई और उसको इन्द्रिय-रुचिकर विशद् रूप दिया गया। परिणामस्वरूप असाधारण तथा अनावश्यक रूप से अलंकरण शुरू हो गया। यह बैराक-शैली है। उस समय पहली बार बेलबूटे बनाये गये। पदार्थ को भी द्वि-आयामी नहीं रहने दिया गया। उसको खोद दिया गया जिससे उसकी पृष्ठभूमि और उसके नीचे की सतह भी दिखायी दे सके।

बैराक-स्थापत्य की भांति बैराक-संगीत में भी विशद अलंकरण और आडंबरयुक्त और अत्युक्तिपूर्ण स्वरमाधुर्य की साधना मिलती है। बैराक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द फ्रांसीसी भाषा से लिया गया है, वहां इसे विशेषण के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है और इसका अर्थ है—असाधारण, विशेष, विलक्षण।

उस युग में अंतराल के प्रति सघन रुचि का प्रतिविम्व संगीत पर भी पड़ा और उसके फलस्वरूप सुर-संगति अथवा सुर-सामंजस्य का उदय हुआ। यह सुर-संगति चित्रकला के दृश्यफलक के समान ही स्वरों के पारस्परिक सम्वन्धों की एक रचना-व्यवस्था है। इसके परिणाम-स्वरूप अन्य दो संगीत-आयामों में एक तीसरे आयाम की वृद्धि हुई—स्वरमाधुर्य और सामंजस्य। यही सुर-सामंजस्य अथवा सुर-संगति है। अन्तराल, स्थान अथवा शून्य पर एकपक्षीय वल देने के कारण पदार्थ-वादी चिंतन-प्रवृत्ति को वल मिला। सुर-संगीत का उद्भव इसी का परिणाम है। यह वात आसानी से समझ में आ सकती है कि क्यों इस युग में संगति का शास्त्रीय स्वरूप धीरे-धीरे वाद्य-संगीत की ओर वढ़ता चला गया। स्पष्ट है कि वह भौतिक उपकरणों की ओर अभिमुख होने लगा था।

हमने पीछे कहा है कि इस युग में मनुष्य का अपना जगत उदय हुआ, एक मानव-केंद्रित जगत की स्थापना हुई। इसमें मानव को 'समस्त मूल्यों का मानदंड, माना गया। मनुष्य और प्रकृति तथा मनुष्य और ईश्वर की सुरक्षित स्थिति से निकल कर मनुष्य त्रि-आयामी अन्तराल की दिशा में अग्रसर हुआ। गेलिलाई ने कहा कि 'जो कुछ परिमापनीय है उसका परिमाप करो तथा जो कुछ अभी तक परिमापनीय नहीं है उसे परिमापनीय वनाओ।' इस आह्वान के साथ जगत की तर्कसंगत दिग्विजय का समारम्भ हुआ। नयी चिंतनधारा के अनुसार जगत उन वस्तुओं से मिल कर वना है जो दिक्-काल में विद्यमान हैं। ये वस्तुएं पदार्थ से वनी हैं और पदार्थ आवेगों को आकर्षित कर सकता है और उनसे प्रभावित हो सकता है। प्रक्रियाएं पदार्थ और ऊर्जा (शक्ति) के पारस्परिक संसर्ग से उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक प्रक्रिया अन्य प्रक्रियाओं का फल और कारण है।

अन्तराल, काल, पदार्थ तथा कार्य-कारण सम्वन्ध पाश्चात्य चिंतन और युक्तिवाद और प्राचीन भौतिकी के केन्द्रीय तत्व थे। इस चिन्तन ने केवल उन वस्तुओं को ही सत्य माना जिनका निरूपण इन्द्रियों के द्वारा किया जा सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ ही प्रकृति के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण चिन्तनमूलक न रह कर फलमूलक अथवा सम्भावनापरक हो गया। प्रत्येक वस्तु के बारे में यह प्रश्न पूछा जाने लगा कि इसका उपयोग क्या है। कला में भी यही हुआ। संगीत ने खेल का रूप ले लिया और उसका प्रयोजन मनोरंजन करना या समय गुजारना बन गया। संगीत उन लोगों के लिए मन बह-लाने का साधन बन गया जो इस साधन को जुटा सकते थे। उसका लक्ष्य दैवी-तत्व के साथ 'संवाद' स्थापित करना नहीं, बदल कर सुख का संचार हो गया।

हेड्न, मोत्सार्त अथवा बिथोवन जैसे संगीतकारों का शास्त्रीय संगीत इस युग का प्रतिनिधि बन बैठा। यह अठारहवीं शताब्दी की बात है। इस संगीत के प्रमुख लक्षण थे—हलकी, आकर्षक रूप से तरंगायित धुनें और परिमार्जित तथा कोमल-सूत्र। जरमनी में इसे रसिक-शैली का संगीत माना जाता है। अपनी मरोड़ और मुरकियों के कारण यह संगीत 'रोकोको' कहलाया। रोकोको फ्रांसीसी शब्द rocaille से बना है, उसका अर्थ है—पत्थर की चट्टान अथवा तराशा हुआ पत्थर।

लेकिन इस युग का संगीत ऐंद्रिक और रसिक शैली का, श्रोता को झुमा देने वाला खिलवाड़ नहीं है, वह उन विरोधी भावनाओं की अभि-व्यंजना भी है जिनके मध्य सामंजस्य पैदा करने के लिए दो मुख्य सूत्रों अथवा विचारों का सोनाटा और सिम्फनी में समायोजन किया जाता है। विकास अथवा भावना संवेग और निजी वैयक्तिक अनूभूतियों में निहित लक्षणों को उभारने के लिए शास्त्रीय संगीत ने संचरणशील अभिव्यंजना का सृजन किया। अभिव्यंजना के चरण संचरिता द्वारा निर्दिष्ट किये जाने लगे, जैसे—क्रेसेंडो (crescendo) डिमिनॉएन्डे (diminuende) आदि। इनसे संगीत को धीरे-धीरे अधिक नाटकीय स्वरूप प्राप्त होता गया।

अन्तराल और अन्तराल-विषयक चेतना में १५०० ईसवी के बाद जो सघनता उत्पन्न हुई और बाह्य विषयवस्तु और उसकी संगति पर जो असाधारण बल दिया जाने लगा, उसका परिणाम यह हुआ कि बाह्य-जगत की अपेक्षा आत्म पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित होता चला गया। इसी में से व्यक्तिवाद का जन्म हुआ। दूसरी ओर अन्तर्ज्ञान की अपेक्षा अमूर्त युक्ति-संगत चिंतन को बल मिलता चला गया जिसकी चरम परि-णति प्रकृतिवाद में हुई और पदार्थवाद के ह्रास का काल शुरू हो गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाश्चात्य संस्कृति के इतिहास के द्वितीय युग में होने वाले विकास के इस अन्तिम चरण की संगीतात्मक अभिव्यंजना को स्वच्छन्दतावादी-संगीत कहा गया है। इसने मनुष्य और मानवीय पक्ष और मनुष्य को वास्तविक लगने वाले वाह्य-जगत पर अत्यधिक वल दिया। शास्त्रीय-काल की युक्तियुक्त रीति से सुस्थापित कृतियों को वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यंजना की वेदी पर वलिदान कर दिया गया। उन रचनाओं का सृजन किया गया जिनका प्रयोजन एक विशिष्ट मनोदशा निर्माण करना था। ये रचनायें स्वच्छंद थीं, इनमें से कुछ उल्लेखनीय हैं— काल्पनिक, असम्वद्ध तथा स्वच्छंदतावादी गीत और समस्वर कविता। कविता ने संगीत की सेवा करना वन्द कर दिया जिसका उदाहरण मोत्सार्त के संगीत में मिलता है, इसके विपरीत संगीत कविता की सेवा करने लगा।

रोमांटिक का अर्थ है अवास्तविक, दुस्साहसपूर्ण, स्वच्छंदतावादी। कलाकार दिन के उजलेपन, मूर्त और वोधगम्य की खोज नहीं करता, उसे रात्रि, एकांत, धरती से परे की वस्तुओं और अवास्तविक, काल्पनिक और चमत्कारिक की खोज रहती है। वह आह्लाद और संतोष से आकर्षित नहीं होता, वरन उसको अपनी ओर खींचते हैं—उदासी और अवसाद। वह लक्ष्यहीन आकांक्षाओं की प्रतिमूर्ति होता है।

शूमें, शॉपँ, लिस्तस्त और वाग्नर ने अभिव्यंजना के नये माध्यमों की खोज की। स्वर संयोजना को अपूर्व महत्ता प्राप्त हो गयी। विलक्षण, अस्वाभाविक तथा दानवी भावों को अभिव्यक्त करने के लिए वाद्यों का उपयोग उनके सामान्य स्वर-निर्देशन के विपरीत किया जाने लगा, जैसे —वांसुरी पर वहुत गहरे सुर निकाले जाने लगे और निम्नकोटि के वाद्यों पर ऊंचे स्वर उठाये जाने लगे। स्वर-वैषम्य अथवा वेसुरेपन को पहले रचना के विभिन्न अंशों की युक्तियुक्त प्रगति और उनके प्रवाह को वनाये रखने के लिए इस्तेमाल किया जाता था, लेकिन अव उसे वातावरण का निर्माण करने और आध्यात्मिक व्यथा की अभिव्यंजना के लिए प्रयोग में लाया जाने लगा। शास्त्रीय युग में चित्ताकर्षक ध्वनियों के माध्यम से सौंदर्यवोध उत्पन्न किया जाता था, किंतु स्वच्छंतावाद ने लाक्षणिक स्वर-वैषम्य के इंद्रजाल की सृष्टि की।

इस विकास-प्रक्रिया के अंत में अंतराल और अंतराल-विषयक चेतना तथा व्यक्तिवाद पर अत्यधिक वल देने का परिणाम दो शैलियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के रूप में सामने आया। इन्हें कला के इतिहास में प्रभाववाद और अभिव्यंजनावदा कहा गया है।

शास्त्रीय युग की कला, अनुशासन की कला थी। स्वच्छंदतावादी कला असंयत और सीमाभंजक वन गयी। शास्त्रीय कला का अर्थ था एकाग्रता, किंतु स्वच्छंदतावादी कला ने व्याप्ति को ही ध्येय वनाया। इस प्रकार प्रभाववाद और अभिव्यंजनावाद स्वच्छंदतावादी कला के विस्तार वन गये।

वैयक्तिक संगीतेतर अनुभूतियों को संगीत में ढाला गया तथा वैयत्ति.क अभिव्यंजना को अतिवाद की सीमा तक ले जाया गया। पारंपरिक सौंदर्य-शास्त्र के सिद्धांतों तथा शास्त्रीय रूपों और विंवों को अभिव्यंजना की नयी आकांक्षा के सामने वलिदान कर दिया गया। प्रभाववाद शुद्ध-स्वरूप और शुद्ध-ध्वनि को अमूत रूप प्रदान करने लगा तथा अभिव्यंजनावाद शुद्ध परिधि-रेखा और शुद्ध लय को। संलय (स्वर-सम्मिश्रण) तथा समध्वनि का पहले वहुत उत्कट विरोध किया जाता था. किंतु अव वे उन पंक्तियों के सयोग से गौण रूप में उत्पन्न होने लगीं जिनकी रचना का मूल प्रयोजन उच्च कोटि की लयात्मक अभिव्यंजना का निष्पादन था। जिस प्रकार प्रभाववादी कलाकारों ने एक नयी तात्विक-समध्वनि की खोज की, उसी प्रकार अभिव्यंजनावादियों ने एक नयी प्रकार की तात्विक-लय का अनुसंधान कर लिया।

पाश्चात्य संस्कृति का दूसरा युग अपने विकास की अभावात्मक स्थिति में प्रवेश कर रहा था। इसे हम अभावात्मक इसलिए कहते हैं कि इसके नियमिक और आधारभूत प्रतिनिधि तत्व पीछे रह गये तथा ऐसे नये तत्व मुख्य भूमिका अदा करने के लिए सामने आये जिन्हें नकारात्मक कहा जा सकता है, जैसे—लत–मर्यादा, शास्त्रीय आकल्पक संगति और समध्वनिमूलक कृत्य, लयात्मक समरूपता और तुरीयक का परित्याग और विघटन। स्वयंसिद्ध है कि ये नकारात्मक तत्व नये उदीयमान संगीत के सकारात्मक आधार वन गये।

प्रभाववादी संगीतकार क्लाउडे डेव्सी को बौद्धिक प्रेरणा फ्रांसीसी प्रभाववादी चित्रों से प्राप्त हुई और अभिव्यंजनावादी संगीतकारों मे सवसे अधिक महत्वपूर्ण संगीतकार आरनाल्ड श्युनवर्ग को क्लिमत्स और कोकोशूका के अभिव्यंजनावादी चित्रों से। श्युनवर्ग ने उस शैली के चित्र वनाने की चेष्टा भी की थी और उसी समय से वह इस अमूर्त और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्ध अभिव्यंजनावादी शैली का अनुसरण करता रहा। पाश्चात्य संस्कृति की यह अव्यवस्था अभी समाप्त नहीं हुई है। अत्युत्पादन, मुद्रा-स्फीति, यंत्रीकरण, स्वचालन तथा परमाण्वीकरण इस बात के प्रमाण हैं कि युक्तिवाद से पदार्थवाद की ओर सभ्यता का काफिला निरंतर बढ़त जा रहा है और उससे भी परे जा कर कला का यंत्रीकरण हो रहा है।

इस प्रवृति का प्रतिनिधित्व इलेक्ट्रॉनिक संगीत और ठोस संगीत करते हैं। वे अमूर्त स्वरों को अमान्य करते हैं, तथा सुर-विषयक रचनाओं के स्थान पर रेलगाड़ी, कार अथवा हवाई जहाज़ के चलने की आवाज़, चिड़ियों की ध्वनियों, विकृत मनुष्य-ध्वनियों, अन्य प्राकृतिक ध्वनियों अथवा इलेक्ट्रॉनिक तथा कृत्रिम रीति से उत्पन्न ध्वनियों को एक प्रकार के ध्वनि मोन्ताज (Montage) में आवद्ध करके एक नये प्रकार के संगीत की रचना करते हैं जो आत्मा पर पदार्थ की दिग्विजय का प्रतीक कहा जा सकता है।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताव्दी से आगे मानवीय-चिंतन की सामान्य प्रवृति विज्ञान और यथातथ्य युक्तियुक्त शव्दावली में निरंतर बढ़ने पर विश्वास की रही। साथ ही, वैज्ञानिक-चिंतन के ढांचे में जो शव्दावली अनुपयुक्त सिद्ध हो जाती है उसके प्रति शंका प्रकट की जाने लगती है जैसे—धर्म, आत्मा और भावना।

आधुनिक विज्ञान ने अनेक अवसरों पर इस शंकाशीलता को बढ़ावा दिया। साथ-साथ वैज्ञानिक शव्दावली की सामर्थ्य के बारे में की जाने वाली अतिशयोक्ति का भी विरोध किया। हमारे जीवन का जो यंत्रीकरण किया जा रहा है उसका लक्ष्य प्रगति है इस धारणा के प्रति भी शंका प्रकट की। आइनस्टाइन और प्लांक ने विज्ञान को यह सिखा दिया कि वर्तमान वैज्ञानिक शव्दावली समग्र-वास्तविकता अथवा सत्य के एक अंशमात्र की ही व्याख्या कर सकती है तथा उसकी पहुँच से परे एक ऐसा बहुत बड़ा क्षेत्र छूट जाता है जिसको न अभी तक समझा जा सका है, न आगे समझ पाना आसान होगा। पूरी तरह तो उसको समझा ही नहीं जा सकता, वह अनंत है।

इस प्रकार हमारी शताव्दी के पूर्वार्द्ध में आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य की आत्मा और आत्यंतिक सत्य के बीच के सम्बन्धों के बारे में अधिक व्यापक दृष्टिकोण की गुंजाइश पैदा कर दी है।

अतः यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य-संस्कृति के इस तीसरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युग में, जो इस समय प्रारम्भिक अवस्था में है, प्रत्येक कला को आत्मा और वास्तविकता के बीच स्थापित इस नये सम्वन्ध के प्रति न्याय करना सीखना होगा। इसके लिए उसे पूर्व-मानवतावादी और मानवतावादी दोनों युगों को तीसरे युग में समन्वित करना होगा।

इसी रीति से दार्शनिक-पदार्थवाद पर विजय प्राप्त हो सकेगी, और एक ऐसी कला का विकास होगा जो मनुष्य को वहिष्कृत किये विना उससे परे के क्षेत्रों में प्रवेश कर सकेगी। इन क्षेत्रों में, पूरा तार्किक रीति से अर्थात् अयुक्तियुक्त और युक्तियुक्त के वीच सामंजस्य स्थापित करके, एक वास्तविक अथवा प्रकट-सत्य अथवा दोनों के समन्वय को जीवन का आधार वनाया जा सकेगा।

इस विकास का सहज परिणाम यह होगा कि कला का आध्यात्मीकरण हो जायेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विकास के प्रथम लक्षण हमारे जमाने के जीवित रचनाकारों, जैसे—पियरे वाडलेत्सलु, इगीनोनो, कार्लहाइन्त्स श्टाकहाउजन और वयोवृद्ध ईगार श्ट्राविन्सकी की रचनाओं में उभरने लगे हैं।

संगीत का यह जगत वह परमाणविक-भौतिक जगत है जिसका रहस्योद्घाटन आधुनिक-विज्ञान ने किया है। इसमें रचनामूलक परिवर्तन केवल सिद्धांतों में ही नहीं, ध्वनि के क्षेत्र में भी प्रकट होने लगा है, और एक नये दर्शन के माध्यम से संगीत में स्थापित हो रहा है। जो चीजें किसी जमाने में सघन, भारी, वजनदार और स्वयंपूर्ण थीं वे अव निलंवित और अंतर्मुख-सक्रिय हो गयी हैं। इस कारण उनकी पहले की अचंचलता और अन्तराल और व्यवस्था के भीतर एक स्थिर स्थिति की अवस्था समाप्त हो गयी है। वुनियादी सूत्र अथवा स्थिर आधार, व्यवस्थित विषयवस्तु के वार-वार प्रकट होने की परंपरा, और लय के अभाव के कारण यह संगीत चंचल और अमूर्त प्रतीत होता है।

प्रत्येक कला की जड़ें तर्कहीनता में होती है। इस कारण कला की व्याख्या का प्रत्येक प्रयास शंकास्पद होता हैं। स्वरों, भवनों, आकल्पनों अथवा रंगों में जिस चीज की अभिव्यक्ति हो रही है उसकी विशद् व्याख्या शव्दों में नहीं की जा सकती। वाचा से परे की शव्दातीत वास्तविक और प्रत्यक्ष अभिव्यंजना को कभी भी शब्दों में नहीं बांधा जा सकता।

पाश्चात्य-दर्शन में होने वाले परिवर्तन कला की शैलियों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही सबसे अधिक आसानी के साथ दृष्टिगोचर होते हैं। जगत को लेकर हमारी मानसिक धारणा में जो परिवर्तन होते हैं उनके भीतर झांककर देखें तो हमें कला और उसकी अभिव्यंजना का सही अर्थ समझ में आयेगा।

संगीत संचार का माध्यम, चेतना की प्रवृत्ति का प्रतिबिंब, वैज्ञानिक ज्ञान की अभिव्यंजना, सामाजिक व्यवस्था का प्रतिबिंब तथा किसी ऐतिहासिक स्थिति का प्रतिनिधि होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय और पाश्चात्य कला : क्या मिलन संभव है ?

भारतीय और पाश्चात्य कला का मिलन संभव है या नहीं, इस प्रश्न पर संगीत के क्षेत्र में, विशेषतः हाल में ही यहूदी मेनुइन और रविशंकर के बहुचर्चित संयुक्त-रेकार्ड के बाज़ार में आने के बाद, काफी चर्चा हुई है। लेकिन इस चर्चा का भावनात्मक और वैयक्तिक आधार ही अधिक रहा है, वैज्ञानिक कम !

कहा जाता है कि पाश्चात्य और भारतीय संगीत के भौतिक तत्वों का सम्मिश्रण संभव नहीं है। एक विचार यह है कि भारतीय और पाश्चात्य परम्पराएं एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं और उनके बीच की खाई को किसी भी तरह नहीं पाटा जा सकता। इस धारणा के पक्ष में हर तरह के सौन्दर्य-शास्त्रीय तर्क दिये जाते हैं और यह सिद्ध करने के लिए कि भारतीय और पाश्चात्य ध्वनि-तत्वों का संयोग असम्भव है, उन तर्कों को कला-दर्शन के साथ जोड़ा जाता है। इतना ही नहीं, पाश्चात्य और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय कृतियों को एक ही कार्यक्रम में प्रस्तुत किए जाने का भी प्राय: कड़ा विरोध किया जाता है।

भारतीय और पाश्चात्य संगीत के समन्वय के विपक्ष में दिये जाने वाले अनेक तर्क, और शायद अधिकांश तर्क, एक प्रकार से इस ऐतिहासिक घड़ी में सही माने जा सकते हैं। यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि इस प्रकार के संयोग के लिए अनिवार्य सामाजिक परिवेश आज उपलब्ध नहीं है।

भारतीय और पाश्चात्य कला के संयोग का प्रश्न वस्तुत: भविष्य का प्रश्न है। अत: मेरी यह दृढ़ धारणा है कि इस प्रश्न का उत्तर 'हां' में दिया जाना चाहिए। एक दिन ऐसा ज़रूर आएगा जब भारतीय और पाश्चान्य ध्वनि-तत्वों के सम्मिश्रण से एक नयी संगीत-भाषा का जन्म होगा। सामान्यत: जिस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य कला का मिलन हुआ है, उसी तरह भारतीय और पाश्चात्य संगीत का भी सम्मिश्रण होगा। वह मिलन उस एक-विश्व का प्रतिबिम्ब, अभिव्यक्ति और तर्क-संगत परिणाम होगा जिसका निर्माण पूर्व और पश्चिम के सभी लोग मिलकर कर रहे हैं। यह एक-विश्व-संस्कृति के विकास की दिशा में एक अनिवार्य चरण होगा। आज यह मिलन अपरिहार्य बन चुका है और प्रतिगामी शक्तियों के रोके रुकेगा नहीं।

मेरा यह विश्वास है कि पाश्चात्य और भारतीय ध्वनि-तत्वों और रचना सिद्धान्तों का मिलन और उस मिलन से जन्मी नयी संगीत-भाषा इस विकास के साथ जुड़े सांस्कृतिक मूल्य क्रांति का स्वाभाविक प्रतिफलन हैं। इस विकास में समाज-शास्त्रीय-शक्तियों का हाथ सबसे अधिक रहता है। और वस्तुत: भारतीय और पाश्चात्य कला के मिलन के प्रश्न का विश्लेषणात्मक और निश्चयात्मक उत्तर समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से ही दिया जा सकता है।

सभी जानते हैं कि समाज की समाज-शास्त्रीय अधिसंरचना —विज्ञान, कला, धर्म, राजनीति, (और स्वाभाविक है कि), संगीत भी काफी सीमा तक उसकी आर्थिक अन्तर्रचना अर्थात् उत्पादन-क्षमता और आर्थिक दशा तथा उससे प्रभावित सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर होती है। समस्त कलाएं —संगीत भी —अंततः सामाजिक, और आर्थिक व्यवस्था का प्रत्यावर्तन हैं। यह व्यवस्था ही कला कृतियों और आकार-प्रकार का निर्धारण करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाख़ और हैंडल के चर्च-संगीत की तुलना से यह वात सिद्ध हो जाती है। दोनों संगीतकारों ने प्रोटेस्टेंट-मतावलम्वी चर्च के लिए संगीत-रचना की है। कुल मिलाकर वाख़ के संगीत में उन भौतिक स्थितियों के प्रति असंतोष से उत्पन्न अंतर्मुखी उदासीनता और असंपृक्तता का आभास मिलता है जिनमें समाज वाख़ को पैदा करने वाला जी रहा था। जर्मन-समाज का वह मध्यम-वर्ग वाख़ के ज़माने में आर्थिक गतिरोध की स्थिति से गुज़र रहा था। हैंडल का संगीत उससे विल्कुल अलग किस्म का है। उसमें ओज लवालव भरा है और संगीत श्रोता के अंतर में प्रवल आत्मविश्वास, जीवन की स्वीकृति, आशावाद और प्रसन्नता का सुख संचरित करता है। इसके मूल में यह तथ्य सन्निहित है कि हैंडल व्रिटेन के उस धनी समाज के समृद्धि-सम्पन्न मध्यम-वर्ग का संगीतकार था, जो उसके ज़माने में अपने उपनिवेशवादी-उत्कर्ष के चरम शिखर पर था।

वाख़ के संगीत का अंतर्मुखी चरित्र जर्मनी के एक छोटे-से कस्वे के जीवन की सहज अभिव्यक्ति है। उसमें ज्यादातर उस देहाती जिन्दगी का प्रतिविम्व मिलता है जिस पर आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रभाव नहीं पड़ा था। इसके विपरीत हैंडल का संगीत एक ऐसे विश्व-नागरिक की मनोदशा की अभिव्यक्ति है जिसने अपने युग में दुनिया की वड़ी-वड़ी राजधानियों में सक्रिय जीवन जिया और जो पाश्चात्य-जगत में प्रगति के केन्द्र में रहा।

एक और उदाहरण लें : १९ वीं शताब्दी की प्रारम्भिक दशाब्दियों में सामंतशाही के पतन के कारण कलाकारों के दरवारी-संरक्षण की व्यवस्था धीरे-धीरे नष्ट हो गई और उसके साथ ही तथाकथित सामंतवादी संगीत का भी लोप हो गया। सामंतवादी पतन के वाद एक नये श्रोता वर्ग का जन्म हुआ, जो मध्यम-वर्ग का था। उसने नये प्रकार के संगीत और नये सामंतकारों की मांग की। एक नयी प्रणाली और स्वरूप सामने आए जिसे हम रोमानी कहते हैं। इसके रचनाकार स्वतंत्र अभिजात-व्यक्ति के प्रतिनिधि वने। उन्होंने इन लोगों की कल्पनाओं के आधार पर संगीतरचना की, वैयक्तिक जीवन के अनुभवों से प्रेरणा ली और अपनी कला के वारे में निर्वैयक्तिक प्रयोजनों की धारणा को अस्वीकार किया। उन्नीसवीं शताब्दी के संगीतकारों ने दरवारी आचरण-संहिता की मांगों और सामंत संरक्षकों पर भावनात्मक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्भरता की विशेषताओं से मुक्त होकर उन समस्त व्यक्तिगत भावनाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति शुरू की जो स्वतंत्र व्यक्तित्व का लक्षण मानी जाने लगी थीं। दरबारी आचरण-संहिता के अनुसार सटीक होना, तथा छंद और नियंत्रण को कला का सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्षण माना जाता था; पर नये वर्ग के मुक्त रचनाकार को सामाजिक तूफानों और तनावों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए सृजन-स्वातंत्र्य और रूप-बिम्बों तथा परम्पराओं की अवहेलना की छूट दे दी गयी थी। इस मुक्त रचनाकार से कलात्मक व्यक्तित्व की अपेक्षा की गई जिसके माध्यम से समस्त भावनाएं और आकांक्षाएं संपूर्णतः अभिव्यक्त हो सकें और जिसकी भावुकता नियमों और सीमाओं को लांघकर सहज भाव से कला-कृति के स्वरूप का निर्धारण कर सके।

अपनी ही सहज स्फुरण से प्रेरित होकर रोमानी-रचनाकार ने अभिजात मध्यम-वर्ग के लिए मानव-प्रकृति के ऐसे स्वरूप की सृष्टि की जिसने समस्त सामंतवादी परम्पराओं को त्यागकर व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास को ज्यादा पसंद किया। सर्वोच्च सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्यक्तिवादी विचारों का समर्थक होने के नाते उसने व्यक्तिगत-कार्यों में स्वतंत्रता-प्राप्ति के संघर्ष का नैतिक समर्थन किया; आर्थिक-व्यवस्था और राजनीति जैसे घोर भौतिकवादी क्षेत्रों में भी।

अभिजात मध्यवर्ग ने उन्नीसवीं शताब्दी की दूसरी, तीसरी और चौथी दशाब्दियों में योरुप के तथ्यवाद और प्रतिक्रिया के विरुद्ध, लोकतंत्र के समर्थन के लिए इस संगीत को एक उत्प्रेरक और शस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया। इसका ध्वनि-पक्ष एक नयी पद्धति पर आधारित था जो पिछली शताब्दी से एकदम अलग था।

सामाजिक-आर्थिक विकास के निम्न-तत्व संगीत सम्बन्धी अभिव्यक्ति पर निर्णायक प्रभाव डालते हैं—

१. उत्पादक-तत्वों की स्थिति और उससे उत्पन्न होने वाली आर्थिक-दशा।
२. इस स्वीकृत बुनियाद पर आधारित सामाजिक संगठन। यह सामाजिक संगठन उस विशिष्ट संगीत का आधार होता है जिसका कर्तव्य समाज की निर्वैयक्तिक जरूरतों को पूरा करना है। सामाजिक-संगठन और उसके परिणामस्वरूप समाज की सांस्कृतिक-आवश्यकता में होने वाला परिवर्तन संगीत सृजन को परिवर्तित (बदल) कर देता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। ये वे सक्रिय तत्व हैं जो इतिहास की समूची-यात्रा के दौरान कला और संगीत के विकास को प्रभावित करते हैं।

३. संगीत का सामाजिक सृजन ही अंततः संगीतात्मक कलाकृति के स्वरूप और उसकी पद्धति का निर्धारण करता है। उसमें परिवर्तन हो जाने पर नया स्वरूप और नयी पद्धति उभर आती है। ज्यादातर पुरानी पद्धतियां नये परिवेश में समाहित होने की चेष्टा करती हैं, पर प्रायः वे नष्ट हो जाती हैं।

४. संगीत के विकास को प्रत्यक्षतः प्रभावित करने वाले विशिष्ट तत्व ये हैं—

(क) संगीतकार का सामाजिक, आर्थिक स्तर;

(ख) जिस अभिभावक और श्रोतावर्ग के लिए संगीत की रचना की गई है, उसका स्तर और हित, उसकी रुचि और आवश्यकता।

(ग) प्रदर्शन की स्थिति, स्थान और सम्भावनाएं इत्यादि।

(घ) यंत्रों के विकास का स्तर, प्रदर्शन की तकनीक आदि तकनीकी-तत्व।

(ङ) भौगोलिक और राष्ट्रीय चरित्र के तत्व : जलवायु, यंत्रों की रचना के लिए कच्चे माल की उपलब्धि और अनुपलब्धि; राष्ट्रीय विरासत, स्थानीय पारिपाटियाँ, भाषा, संगीत सम्बन्धी पूर्ववर्ती विकास, संगीत की परम्परा, ऐतिहासिक घटनाएं आदि।

पूर्व और पश्चिम में विकसित होने वाली तकनीकी और औद्योगिक विश्व-संस्कृति निश्चित रूप से नयी आर्थिक स्थिति और नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करेगी। आज हम जिस सभ्यता के अभ्यस्त हैं उससे वह सर्वथा भिन्न होगी। उस स्थिति में संगीत भी भिन्न रूप ग्रहण करेगा। निजी रूप से मेरी यह निश्चित धारणा है कि यह सांस्कृतिक मूल्य-क्रान्ति इतनी बड़ी और उग्र होगी, जिसका आज हम अन्दाजा भी नहीं लगा सकते।

संसार के सभी देशों और महाद्वीपों के वर्तमान सामाजिक ढांचे का रूपान्तरण, छोटे-मोटे परिवर्तनों और सुधारों से सम्भव नहीं। उसके लिए एक उग्र परिवर्तन की जरूरत होगी, एक स्तर से दूसरे स्तर तक छलांग लगानी होगी। नयी समाज-व्यवस्था के इस अभ्युदय से केवल कुछ ऊपरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्योरों में ही परिवर्तन नहीं, वरन् सम्पूर्ण व्यवस्था का आमूलरूपान्तरण हो जाएगा। तकनीकी विश्व-संस्कृति की समाज-व्यवस्था बहुलवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, स्वच्छंद और गतिशील होगी। उस व्यवस्था का ध्येय यथासम्भव अधिकतम उत्पादन होगा। वह सांस्कृतिक और सामाजिक निरन्तरता और स्थिरता के द्वारा सम्भावित शक्तियों के अधिकतम उपयोग की चेष्टा करेगी। आस्था और परम्परा वैयक्तिक जीवन के मूल्यों का निर्धारण नहीं कर सकेंगी, और उनकी सामाजिक-प्रभावशीलता का अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा जिससे समूची पारम्परिक-संस्कृति—संगीत भी बच नहीं सकेगा।

वर्तमान स्थिति में यह भविष्यवाणी नहीं की जा सकती कि यह भावी-विश्व-संस्कृति राष्ट्रीय और जातीय सीमाओं को नष्ट करके जातियों और संस्कृतियों के बीच एक सशक्त सह-मिलन को जन्म देगी या अवर्तमान सांस्कृतिक-मूल्यों का पोषण करेगी जो औपनिवेशिक अधिशासन और साम्राज्यवाद के नीचे कुचलकर नष्ट हो गये थे।

मेरी आस्था जातियों और संस्कृतियों के सशक्त सम्मिश्रण और साथ-साथ सभी वर्तमान सांस्कृतिक-मूल्यों की एक समन्वित नवीन मूल्य-व्यवस्था में है। मेरा विश्वास है कि सम्मिश्रण और विलय की इस उत्तरोत्तर प्रक्रिया में कतई कहीं संदेह की गुंजायश नहीं है। मानवीय क्रिया-कलाप और चिन्तन के क्षेत्र, यातायात, तकनीकी, विज्ञान और राजनीति आदि में इसके लक्षण उभरने लगे हैं। संगीत के क्षेत्र में भी पूर्व का पश्चिम पर और पश्चिम का पूर्व पर जो प्रभाव पड़ रहा है और उससे जो तथ्य हमारे सामने आये हैं उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यांत्रिक पुनर्प्रस्तुतीकरण के क्षेत्रों में विशेषतः फिल्मों में इस प्रक्रिया का स्वागत हुआ है।

इसी वजह से मैं प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दे सकता हूं—भारतीय और पाश्चात्य-कलाओं का मिलन उस एक-विश्व में होगा जिसका निर्माण अब होने वाला है। यह नयी संस्कृति तकनीकी-विश्व-संस्कृति होगी। विश्वव्यापी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के फलस्वरूप एक नये संगीत का जन्म होगा, जिसमें राष्ट्रीय स्वरूप के लक्षण कम-से-कम रह जायेंगे। यह संगीत एक विश्वव्यापी निर्वैयक्तिक चिन्तन और भावना की अभिव्यक्ति का परिणाम होगा और इसमें पूर्ववर्ती संस्कृतियों के पारम्परिक-मूल्यों का एकीकरण हो जायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत में ध्वनि और मौन का सम्मिश्रण एक परामानसिक अनुभूति

(Unity of sound and silence as mythical expreience in the music of India)

समस्त संगीत का सार है मौन। इसके बिना आध्यात्मिक तत्व की सिद्धि नहीं होती। संगीत आध्यात्मिक तत्व है। इसे आत्मा द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। मौन ध्वनि का निषेध या ध्वनि-उत्पादक की समाप्ति नहीं है। मौन सापेक्ष धारणा भी नहीं है। मौन परम-पूर्ण है, निरपेक्ष है। यह वह मौन है जो समस्त ध्वनिमूलक आधारों और सम्बन्धों को आच्छादित किये रहता है। इसमें न कोई गति है, न विकास, न प्रगति, किंतु इसमें अनास्तित्व भी नहीं है। वह मौन ही है जो इन सब की संभावना उत्पन्न करता है। यह मौन निस्सीम सामर्थ्य और शाश्वत तत्व से परिपूर्ण है।

यह शुद्ध आत्माजनित मौन है, आत्माधारित अस्तित्व। यह वह निरापद मौन है जो समस्त आधारों और सम्बन्धों से ऊपर है। यह एक ऐसी ध्वनि है जिसे कानों से नहीं सुना जा सकता और जिसके चारों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओर सुनी जा सकने वाली ध्वनियां मंडराती रहती हैं। यह वह वास्तविकता है जो विरोधी धारणाओं में समन्वय स्थापित करती और नाटकीय संघर्षों की सम्भावना को स्थगित कर देती है। ऐसी संगीत-संस्कृतियां बहुत ही कम हैं। जिनमें ध्वनि और मौन की परिपूरक-ध्रुवीयता समस्त अभिव्यंजनाओं के पीछे निहित रहती है। भारतीय संस्कृति ऐसी ही एक संस्कृति है। ध्वनि और मौन परिपूरक अतियां हैं। भारतीय संगीतकार इस मौन के साथ सदा तदाकार रहता है, यही कारण है कि अपनी अत्यन्त कुशल कृतियों में भी वह इस मौन के साथ संवाद स्थापित कर लेता है। मौन के साथ ध्वनि के माध्यम से ही संवाद स्थापित किया जा सकता है। ध्वनि अपने आप में एक लक्ष्य अथवा परिणति नहीं है, वह मौन की परिपूरक है और साथ ही उसकी अभिव्यंजना भी। जब दोनों ध्रुव,ध्वनि और मौन अस्तित्व में होते हैं तभी हम भारतीय संगीत की प्रकृति और उसके सार को समझ सकते हैं। केवल ये दो तत्व ही भारतीय संगीत को हृदयंगम करने के लिए आवश्यक हैं। लेकिन यह तभी हो सकता है जब इन दोनों को युक्तियों द्वारा परस्पर-विरोधी सिद्ध करने की बजाय प्रारम्भिक उभयमुखता के रूप में देखा जाये। यह सचमुच एक परामानसिक-अनुभूति है।

परामानसिक का अर्थ यहां ध्वनि और मौन का संयोग, नीरवता और अन्तर्मुखी ध्यान से है। आत्मा के स्वर को सुनने के बाद उसे अभिव्यक्त करना ही चाहिए। भारतीय संगीत मौन का संगीत है, हमारे अस्तित्व की प्राथमिक भाषा है। वह कुछ इस प्रकार शुरू होता है और इस तरह ध्वनियां उभारता चला जाता है कि आत्मा की आवाज उनमें खो नहीं जाती, बल्कि उनके माध्यम से वह और आगे बढ़ती जाती है और ऐसी जीवन-अनुप्राणित भूमिका पर पहुँच जाती है जहां से ये सब ध्वनियां निसृत और मुखर होती हैं। यदि ध्वनि को सही रीति से सुना जाये तो उसके भीतर से उसका मौन स्वतः फूट पड़ेगा। जब हम रात के समय किसी एकांत जंगल में टहल रहे होते हैं तब हमें चेतना होती है कि नदी की कलकल ध्वनि मौन का सृजन कर रही है। नदी की धारा में से कुछ विलक्षण निसृत होता है, हम उसकी कलकल ध्वनि को भूल जाते हैं और उसके मौन की ही अनुभूति हमें होती है। इसी तरह गीत को गाते समय जीवन का महान मौन मुखर हो उठता है।

परामानसिक के लिए यूनानी भाषा में 'mytheomai' शब्द है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसका अर्थ है, बात करना, बोलना, कहना। द्वैधवृत्ति-संस्कृति धातु भू से एक और क्रियापद का जन्म हुआ—यूनानी शब्द 'myein'। का अर्थ है अपने आपको बंद कर लेना। यह आँखों और मुंह के द्वारा अपने आपको बन्द कर लेना है।

संस्कृत शब्द मूक भी इसी धातु से बना है। इसका अर्थ है गूंगा। लैटिन में यह 'mutus' हो गया। यूनानी भाषा में इसने 'mystes' और 'mysterion' का रूप ले लिया। ईसाई जगत में इसी से—'mystic' रहस्यमय की धारणा उत्पन्न हुई···बंद या अन्तर्मुखी आंखों से मौन अन्तर्निरीक्षण।

इसके दोनों अर्थ मान्य हैं। दोनों शब्द मिथिकल की व्याख्या करते हैं और दोनों अर्थ भारतीय संगीत की। सिर्फ ध्वनि की अनुभूति पर्याप्त नहीं है. वह तो संगीत-अभिव्यंजना का एक पक्ष है। ध्वनि हीनता या मौन की अनुभूति भी पर्याप्त नहीं है। दोनों समग्र रूप में भारतीय संगीत की व्याख्या करते हैं। मिथिकल शब्द की दोनों धातुओं के अर्थ मिलकर ही भारतीय संगीत की गहराई और उसकी परामानसिक अनुभूति की गहनता को अभिव्यक्त करते हैं।

भारतीय संगीत घोष और मौन—एक साथ दोनों है। उसके मंजुल गानमय घोष के द्वारा मौन का सृजन होता है, ठीक वैसे ही जैसे एकांत जंगल में कलकल करने वाली नदी की धारा से। और, उसके मौन माध्यम से ही उसका मंजुल गानमय घोष प्रभावी बनता है।

शायद ही संसार में कोई दूसरी ऐसी संगीत-संस्कृति होगी जिसमें घोष और मौन का प्रभाव इतना तीव्र और इतना स्पष्ट सुनायी पड़ने वाला हो,जैसा भारतीय संगीत में है। उसमें प्रत्येक स्वर सिर्फ अनिवार्य ध्वनि निकालता है और एक प्रकार मूल्य और अर्थ प्राप्त करने के लिए व्यक्ति-सापेक्ष व्याख्या पर निर्भर रहता है। इस प्रकार वह आध्यात्मिक अनुभूति के परिपूर्ण-मौन के साथ श्रोता को संयुक्त कर देता है।

भारतीय संगीत का यह परामानसिक अनुभव आत्मा की चेतना अर्थात् एक आंतरिक सृष्टि का सर्वेक्षण कराता है। भारतीय-संगीत एक चक्र है जो राग या वादी और संवादी की मूल कल्पना के चारों ओर द्वि-आयामी स्तर पर घूमता रहता है। यह चक्र हमेशा से आत्मा का प्रतीक रहा है। यह सब ध्रुवीय तत्वों और सभी परिपूरक घटनाओं का सर्वेक्षण करता, और उनको एक सूत्र में पिरो देता है। यह क्रिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठीक वैसी ही है जैसे कि ग्रहों का उदय और अस्त होना और समस्त दृश्य और अदृश्य मार्गों का सर्वेक्षण करते हुए अपने मार्ग के आदि-स्रोत पर लौट आना।

भारतीय संगीत का यह सहज, ऐहिक चक्र गायन और वाद्य-संगीत के रूप को परिभाषित करता है और इसमें उस अदृश्य का भी दर्शन हो जाता है जो आत्मा के प्रतिबिम्ब के रूप में प्रकट होकर विलुप्त हो जाता है। रूप या आकार अपने आप में कुछ भी नहीं है, किन्तु यदि यह संगीत व्यक्ति को अपने उद्गम की परिपूर्ण अनुभूति के लिए तैयार कर देता है और बुद्धि को सार्वभौमिक नियमों के सत्य तक ले जाता है, तो यह मानना होगा कि यही समष्टि की महत्तर-व्यवस्था को सही रूप में प्रतिबिंबित करता है।

जब हम कलाकृति के माध्यम से जीवन के उद्गम की ओर बढ़ते हैं तो मौन हमें छा लेता है। एक ऐसा मौन, जिसके माध्यम से जीवन मुखर हो उठता है। केवल संवेदनशील मस्तिष्क ही इस मौन की पावनता का अनुभव कर सकता है। मानव-निर्मित कृतियों के पार मौन के संगीत का अर्थ है—शब्दातीत की संगीतमय अभिव्यंजना, उस ध्वनि को सुनने का अभ्यास जो ध्वनि ही नहीं है। यह है शून्य का बोधगम्यता प्रदान करना और ज्ञानातीत को समझने का अभ्यास करना।

भारतीय संगीत की परामानसिक, सहज और कलात्मक, चक्राकार गति में हमें काल के साथ आत्मा के सम्बन्ध, स्वर्ग और पृथ्वी, ईश्वर और जीव, प्राण और पदार्थ की पूरक अतियों का बोध होता है। भारतीय मंदिरों और समाधियों की स्थापत्यकला में भी परामानसिक अनुभूति की ध्रुवीय धारणा ही प्रतिबिंबित होती है। उसमें आकाश की ओर उठे हुए ऊंचे बुर्ज, स्तम्भ और शिखर, सार्वभौम मंजूषा की तरह बन्द शून्य के ही अनुपूरक हैं। ताजमहल के स्फटिक के मौन स्वरों में परामानसिक शब्दावली का संदेश प्रतिध्वनित हो रहा है। इस समाधि का संगीत-मय स्फटिक एक मौन परामानसिक तत्व है, यह परामानसिक वक्तव्य का विपरीत छोर है।

परामानसिक अनुभूति स्वर और इसी का मूक हो जाना है। यह मौन अन्तर्निरीक्षण और आभ्यंतरिक श्रवण है अतः आत्मा-बोध बन जाता है। परामानसिक अनुभूति एक दर्शन है, एक बिम्ब है। वह देखे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये दृश्य और सुने गये शब्द की परिभाषा और प्रतिवेदन है। अन्तर्चक्षु ने जो कुछ देखा है, उसी का ध्रुवीय संगीत या अनुभूति स्वप्न की तरह कविता, या संगीतमय कलात्मक सन्देश के रूप में मुखर हो उठती है। अनुभूति के मानसिक स्वरोच्चार में सह्ला ध्रुवीयता और उभय-मुखता के तत्व होते हैं। कारण यह कि यह अवरोध की नहीं, प्रवाह की अभिव्यंजना है। यह उस प्राणदायी संचरण शीलता का सम्बोधन जो अनूभूति का स्वभाव है। अनुभूति आत्मा को ही होती है अतः उसे भी ध्रुवीय कहा जा सकता हैं। यह हमारे साथ घटित होने वाली कोई ऐसी घटना नहीं है जहां हम निष्क्रिय रहते हों, हम तो साथ-साथ उसमें भाग लेते रहते हैं। चूंकि हम जगत को अनुभव करते हैं, अतः यह एक सक्रिय चेष्टा है।

इस अनुभूति में जगत और उसका विपरीत छोर आत्मा दोनों चेतना के कगार पर जा मिलते हैं। वास्तविक अनुभूति कभी तर्क-सम्मत या बौद्धिक नहीं होती। इसमें केवल आत्मा की उदवद्धता सन्निहित है। यह एक ऐसा अनुभव है जिसे बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती। बुद्धि में इस के परिमाप की क्षमता ही नहीं है। अनुभूति मानसिक आत्यन्तिकता और सत्य को वेधने वाली अन्तर्दृष्टि हैं और वह व्यवधानयुक्त अनुभवों या मात्र कार्यकारण संयोग के ज्ञान से मौलिक रूप में, भिन्न है।

प्रत्येक अनुभूति, आत्यंकिता की भावात्मक अनुभूति है। वह संयोग का एक अनुपूरक और परामानसिक स्वरूप है। इस प्रकार, भारत का संगीत आत्मा की ओर ध्वनि-मौन की आरसी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय और पाश्चात्य संगीत में चेतना की विभिन्न वृत्तियों की अभिव्यंजना

समस्त सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की भाँति संगीत भी चेतना की कुछ वृत्तियों का प्रस्फुटन और उनका प्रतिबिंब है।

सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों से मेरा प्रयोजन कला और विज्ञान, वाणी और लेखन, यहाँ तक कि फैशन और पाकविद्या तक से है। अपनी-अपनी शैली, अभिव्यंजना और विषयवस्तु के माध्यम से ये सभी सांस्कृतिक गतिविधियां मानवीय चेतना को प्रतिबिंबित करती हैं।

समस्त कलाओं की भांति संगीत भी मानवीय चिंतन और अनुभूति की स्पंदन-मापक अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार मध्यकाल के पाश्चात्य संगीत की पुनर्जागरण, बैराक, शास्त्रीय और स्वच्छंदतावादी शैलियां हों, या हमारे युग का संगीत, सभी चेतना की विविध और प्रायः विषम वृत्तियों का प्रतिफलन हैं।

विभिन्न जातियों का संगीत चेतना की विभिन्न वृत्तियों और प्रकारों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अनुरूप होता है। पूर्व का संगीत चेतना की एक विशिष्ट वृत्ति का परिणाम है तो पश्चिम का एक अन्य वृत्ति का।

शैलियों का उदय चेतना की एक निश्चित वृत्ति के प्रतिबिंब के रूप में होता है, तथा शैलियां उन लक्षणों का समुच्चय हैं जो किसी कलाकृति को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं।

संगीत अपने स्रष्टा तथा अपने सांस्कृतिक उद्गम-क्षेत्र को विशिष्ट चेतना की मात्रा और उसके स्वरूप को प्रतिबिंबित करता है। उसमें उसके ऐतिहासिक रचनाकाल की जनता का चिंतन और उसकी भावनाएं प्रतिबिंबित होती हैं।

चेतना से मेरा तात्पर्य उस क्षमता से है जिसके द्वारा हम अपने अस्तित्व के निर्माण संबंधों को ग्रहण कर पाते हैं, उनके बीच आपसी और उनके-हमारे संबंधों को क्रमवद्ध रूप दे पाते हैं, और उनकी प्रयोजन-शीलता को पहचान पाते हैं, अर्थात् विषयवस्तु और अनुभूतिशील अहं के परस्पर-संबंध तथा स्वयं उस अहं के कृत्यों को समझ पाते हैं।

चेतना पूर्णतः व्यावहारिक ज्ञान में परिणत नहीं हो पाती। वह न तो चिंतन प्रक्रिया की समरूपिणी है, न मात्र अभिज्ञान तक सीमित है।

चेतना सतत संयोग की प्रक्रिया है, वह समाकलन का एक सर्जन कर्म है।

हम सृष्टि को किस दृष्टि से देखें, यह इस बात पर निर्भर है कि हमारी चेतना किस प्रकार की है। यही चेतना सृष्टि के विस्तार और समय अर्थात् दिक् काल—दोनों को सीमित करने में समर्थ है।

हमारे सामने संगीत की अनगिनत परम्पराएं हैं—इनमें दो महान संगीत-संस्कृतियां अपने आप में परिपूर्ण रही हैं। वे प्रमुख रूप में औरों से भिन्न दिखाई भी देती हैं। उनमें कुछ समानताएं हैं तो साथ-साथ कुछ मौलिक विभेद भी। वे दोनों चेतना की मूलतः भिन्न वृत्तियों में से निष्पन्न हुई हैं। ये हैं—भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत।

पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत से मेरा अभिप्राय यहां अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में प्रचलित पश्चिमी संगीत की शास्त्रीय स्वच्छंदतावादी परंपरा अर्थात् हेडन मोत्सार्त, बिथोवन शूमन या वाग्नर के संगीत से है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत, चेतना की जिस प्रवृत्ति पर आधारित है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे 'सहज ज्ञान-परिधीय' (intuitive peripheral) कहा जा सकता है। इसका अर्थ है अंतर्ज्ञानीय तथा परिधीय चिंतन प्रणाली द्वारा ज्ञानार्जन। दूसरी और पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत युक्तियुक्त-विवादमय वृत्ति पर आधारित है। इसका अर्थ यह है कि पश्चिमी जगत में युक्तियुक्त विश्लेषण को ज्ञानार्जन का साधन माना गया है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत की समूची संस्कृति का विकास चेतना की सहज ज्ञान की वृत्ति में से हुआ है। इसके विपरीत योरुप की संस्कृति का चरम उत्कर्ष उसके इतिहास के युक्तिप्रधान काल में हुआ।

भारतीय संगीत की संरचना पाश्चात्य संगीत से मौलिक रूप से भिन्न है। भारतीय संगीत में अष्टक को २२ स्वर अंतरालों में विभाजित किया गया है, जबकि पाश्चात्य संगीत में अष्टक के अंतर्गत केवल २२ स्वर अंतरालों का समावेश है। भारतीय संगीत-चक्र में सूक्ष्म-सुर-संगति होती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत और पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत के बीच समध्वनिमूलक प्रमुख-स्वर का अंतर बुनियादी है। भारतीय संगीत में वह नहीं होता, किन्तु पाश्चात्य संगीत में उसका बहुत महत्व है। यह एक ऐसा संगीत-शास्त्रीय तत्व है जिसके आधार पर संगीत-रचना का सिद्धान्त तय होता है और जो पाश्चात्य संगीत को एक तीसरा आयाम अर्थात् सुर-संगति प्रदान करता है।

समध्वनिमूलक प्रमुख-स्वर से हमारा प्रयोजन सरगम के उस सातवें सुर से नहीं है जो आठवें अर्थात् स्थायी,स्वर के अष्टक के लिए मार्ग तैयार करता है, यहां हमारा अभिप्राय उस प्रत्येक ध्वनि से है जो समध्वनिमूलक संरचना और प्रचलित मूलस्वर के भीतर अपनी स्थिति के कारण एक अर्द्धस्वर को आरोह और अवरोह की गति में ले जाने और लाने के लिए विवश होता है और इस तरह एक बुनियादी-संबंध निर्माण करता है। यही तीसरा आयाम है, इसे हमने सुर-संगति कहा है।

आयाम से मेरा तात्पर्य श्रवण-विधि से है — क्रमशः श्रवण, योगपदिक श्रवण और समकेंद्रित श्रवण।

प्रथम आयाम लय है। इसमें ध्वनियों का क्रमशः संयोग होता है, वे एक के बाद एक करके आती और पहली में मिलती, समाती अथवा लय होती जाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा आयाम समध्वनि है। इसमें ध्वनियां एक साथ सम्मिलित हो जाती हैं। एक समय में ही अनेक ध्वनियां मिलकर समध्वनि का निर्माण करती हैं। इसी से इसे योगपदिक कहा गया है।

तीसरा आयाम ध्वनियों के समकेंद्रित-संयोग में निहित है। इसे ही ग्राम तौर पर सुर-संगीत (टोनेलिटी) कहा जाता है।

भारतीय शास्त्रीयं संगीत मुख्यत: अनुक्रम तथा विशेष स्थितियों में योगपदिकता के सिद्धान्तों पर ग्राधारित है, अत: वह अधिकांशत: एक-आयामी तथा कभी-कभी द्वि-आयामी है।

पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत की रचना समकेंद्रित संयोग के आधार पर होती है। वह प्रमुख-स्वर की क्रिया के फलस्वरूप त्रि-आयामी हो जाता है।

इस प्रकार समध्वनिमूलक प्रमुख-स्वर की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पाश्चात्य ग्रौर भारतीय शास्त्रीय संगीत के भेद को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व है।

समध्वनिमूलक प्रमुख-स्वर और उससे उत्पन्न सुर-संगति का सिद्धांत संगीत और मनोविज्ञान मिला-जुला तत्व है। वह संगीत के श्रवण में ही निहित होता है और इसका उदय दिक्-काल की युक्तिसंगत चेतना के विम्ब के रूप में होती है। यह एक प्रकार की अन्तरालध्वनि उत्पन्न करता है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि कोई संगीत-ध्वनि उभर रही है। साथ ही यह लय को काल-खंडों में भी विभाजित कर देता है। इन कालखंडों को विराम अथवा ठेका या गत कहा जाता है। यह युक्ति-युक्त रीति से संस्थापित संलय के उत्तरोत्तर क्रम के द्वारा एक प्रकार की संगीतसम्वन्धी परिमेय को जन्म देता है। वह परिमेय है—ग्रन्तराल और काल की परस्पर-निर्भरता, जो श्रोता को ग्रागे आने वाली धुन को पहले से जानने ग्रौर उसकी कल्पना तथा पद के ग्रारम्भ ग्रौर ग्रन्त का अनुमान लगाने की क्षमता प्रदान करती है।

जिस संगीत-संस्कृति की ध्वनि-रचना, सुर-संगति ग्रौर प्रमुख-स्वर सम्बन्धों की अवहेलना करती है, वह चेतना की उस वृत्ति की अभि-व्यंजना मानी जायेगी जिसके लिए दिक् ग्रौर काल युक्तियुक्त तत्व न होकर भावावेश ग्रौर आत्मा के स्तर पर अनुभूत तथ्य वन जायें। यह अन्तर्ज्ञानीय-परिधीय चेतना-वृत्ति भारतीय शास्त्रीय संगीत की वाहिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। भारत-भर में फैले हुए प्रभावशाली गुहा-मंदिर तथा ऐतिहासिक हिन्दू मंदिर और उनका सहज विकसित स्वरूप इस बात का प्रमाण है कि उनके निर्माताओं के मन में अन्तराल की चेतना नहीं रही। उन्होंने पाश्चात्य परम्परा के अनुसार गहराई के अन्तराल अथवा आंतरिक-स्थल की आवश्यकता नहीं समझी। उसके स्थान पर गुफा जैसे अवरुद्ध और सन्दूक की तरह बन्द अन्तराल का निर्माण किया। उसका स्वरूप सार्वभौम है, उसे अलग करके नहीं देखा जा सकता और ऐसा प्रतीत होता है कि वह जगत के साथ एकाकार होने की वृत्ति का परिचायक है। यह उस विराट सार्वभौम धारणा का प्रतीक है जिसके अनुसार समूचे विश्व का एक विराट गुफा मात्र माना गया है।

युक्तियुक्त अर्थ के अनुसार भारतीय संगीत का विधिवत् निर्माण नहीं किया गया वरन् वह सहज और अनायास विकसित तथा अवतरित हुआ है। भारतीय संगीत का मूल लक्षण यह है कि न तो वह पाश्चात्य संगीत की भांति रचित है, न वह युक्तिपूर्वक निर्मित ही है, वह तो अन्तर्ज्ञान के आधार पर सहज उद्भूत है। दूसरे शब्दों में, वह सहज रूप में जन्म लेता है और विकसित होता है और एक सतत सृजनात्मक प्रक्रिया का प्रतिनिधि है।

अन्तराल के बारे में युक्तियुक्त चेतना के अभाव का अर्थ है काल की युक्तियुक्त चेतना का भी अभाव। दिक् और काल एक-दूसरे को घनिष्ठ रूप से प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार भारतीय संगीत का लौकिक पक्ष युक्तियुक्त समय-विभाजन और लयात्मक-तुरीय स्थिति की पूरी तरह अवहेलना कर देता है। ये दोनों पाश्चात्य संगीत के प्रमुख लक्षण और अनिवार्य अंग हैं। भारतीय संगीत प्रायः समरूपता तथा समरूपी-कालसीमा की भी उपेक्षा करता है।

भारतीय संगीत में काल 'अनुभूत-काल' है, युक्तियुक्त आधार पर परिमापित समय नहीं है। युक्तियुक्त-परिमापित समय की धारणा पाश्चात्य संगीत की विशेषता है। इसके प्रमुख तत्व—स्वर-अवधि, मात्रा (समय-माप की इकाई) और लय हैं। इनको घड़ी अथवा मैट्रोनोम नामक यंत्र से नियंत्रित किया जाता है। उसके सुर-संगति पक्ष की विशेषता यह है कि उसका नियमन विभाजक विराम अथवा गत से किया जाता है। श्रोता इस सुर-संगति की ही अनुभूति लेता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाश्चात्य संगीत में काल विभाजक गति, निदेशनात्मक-पदक्रम, तथा संख्यात्मक-मात्रा की व्यवस्था है।

इसके विपरीत भारतीय संगीत में काल एक शाश्वत अनिदेश-नात्मक गति, तथा सम्पूर्ण संगीत-रचना में व्याप्त गुणात्मक व्यवस्था है।

भारतीय संगीत में काल मानसिक है। वह भावावेशात्मक काल, मानवीय आत्मा का प्रतिविम्ब, सहज, अनुभूत-काल है। उसकी छंदात्मक इकाई मनुष्य के हृदय की स्वाभाविक धड़कन में लगने वाला समय है। भारतीय संगीत का सहज प्रवाह अतीत, वर्तमान और भविष्य जैसी काल-विभाजक रेखाओं से सर्वथा मुक्त है। वह आदि और अंत को भी स्वीकार नहीं करता, उसमें केवल अनुपूरक आवर्तन-प्रत्यावर्तन होता है। पश्चिमी संगीत को सुनते समय रचना को पिछली और अगली संगीत-घटनाओं को ध्यान में रखना पड़ता है, किन्तु भारतीय संगीत सुनते समय वैसी किसी चेतना की आवश्यकता नहीं होती, उसमें तो नित्य नयी परत खुलती चली जाती है तथा प्रायः अप्रत्याशित ध्वनि-संयोजन सुनने को मिलता है। वह किसी विशिष्ट विचार के चारों ओर घूमता है। उस विचार की वास्तविकता की अभिव्यंजना राग द्वारा होती है तथा वह अतीत अथवा भविष्य में स्थित न होकर वर्तमान में ही विद्य-मान रहता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत एक आध्यात्मिक अनुभूति, उपासना और लीन हो जाने की साधना है, किन्तु पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत एक प्रति-निधित्व है अर्थात् वह मनुष्य और उसकी भावनाओं का प्रतिनिधित्व तथा उसके भावावेगों की अभिव्यंजना करता है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य संगीत में निहित दिक्-काल की युक्तियुक्त चेतना में मनुष्य के व्यक्तित्व, और पृथक् अस्तित्व की चेतना अन्तर्हित है। यदि हम जगत और वातावरण को पदार्थ के रूप में देखें तो निश्चय ही व्यक्ति को द्रष्टा अथवा कर्ता के रूप में स्वीकार करना होगा। दिक्-काल को विषयवस्तु के रूप में निरूपित करने के लिए एक ऐसे आत्म-चेतन अहं की आवश्यकता होगी जो अपने आपको दिक्-काल के साथ सम्वद्ध कर सके।

मनुष्य और जगत को दो भिन्न तथा विषमरूपी अस्तित्व मान लेने पर एक विशेष प्रकार की चिंतन-प्रक्रिया शुरू होती है जिसमें यह धारणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निहित है कि दो विरोधी प्रत्यय एक-दूसरे के विरुद्ध मोरचा जमाये हुए हैं। इन्हें वाद (थीसिस) और प्रतिवाद (एंटी-थीसिस) कहा जा सकता है, तथा इन दोनों के संवर्ष से संवाद (सिंथीसिस) का जन्म होता है।

इस चिंतन प्रक्रिया को सामान्यतया द्वंद्वात्मक कहा जाता है। इसने प्लेटो और अरस्तू के जमाने से पाश्चात्य चिंतन पर अपना प्रभाव जमाये रखा है। अपने स्वरूप के कारण इसे त्रिकोणात्मक चिंतन-प्रक्रिया भी कहा जा सकता है।

यह विलक्षण युक्तियुक्त-चिंतन-प्रक्रिया पाश्चात्य परम्परा में समस्त शास्त्रीय और स्वच्छंदतावादी संगीत की आधारशिला है। दो विरोधी पक्षों—जैसे, संवादी और विसंवादी, दीर्घ और ह्रस्व, मूलस्वरीय और अधिरोही स्वर तथा संलय और सुरीलेपन की प्रतिकूल स्थितियों में से तनाव और संघर्ष का जन्म होता है। संघर्ष के द्वारा दो संगीत-विषयक वक्तव्य अथवा दो विषम सूत्र, संवाद की ओर अग्रसर होते हैं जिसके परिणामस्वरूप रचना पूरी तरह सुबोध हो जाती है।

युक्तियुक्त द्वंद्ववादी चिंतनपद्धति और उसके अनुरूप संगीत में एकता विकास का परिणाम होती है। इस विकास-क्रम में दो वादों के बीच विवाद उठता है। यह एक नाटकीय भूमिका है, भारतीय संगीत की भांति प्रारंभिक बिंदु नहीं।

भारतीय चिंतन में एकता संवाद नहीं है, यानी वह परिणाम नहीं बल्कि उपोद्घात है। उसमें प्रत्येक विषम पद पूर्वसिद्ध है, परस्पर पूरक दो ध्रुवों का संवादी। ये सब मिल कर एक संपूर्ण इकाई बनते हैं, और जिस प्रकार वर्ष में ग्रीष्म और शरत् बारी-बारी से आते हैं तथा जीवन और मृत्यु मानवीय अस्तित्व के चारों ओर घूमते हैं उसी प्रकार समस्त सुर और लय राग में निहित केन्द्रीय सूत्र के चारों ओर घूमते हैं।

विषम पदों का वह संघर्ष जो नाटकीय तनाव उत्पन्न करता है भारतीय संगीत के लिए विजातीय है। उसकी प्रकृति का मूल तत्व एक केन्द्रीय सूत्र के चारों ओर चक्रवत घूमता अथवा निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया में निहित है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रायः सभी सभ्यताओं में चक्र को आत्मा का प्रतीक माना गया है। यह चक्र विकास की किसी योजना अथवा लक्ष्य के बिना ही निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रतिनिधि है।

यह चिंतन प्रक्रिया त्रिकोणात्मक प्रक्रिया के विपरीत वृत्ताकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा चक्रवत है।

इस चक्रवत, वृत्ताकार चिंतन-प्रक्रिया को एक संक्षिप्त रूप में प्रदर्शित करने के लिए बुद्ध का एक उद्धरण पर्याप्त होगा--

'चित्त ही पाप करता है, चित्त ही दुष्प्रवृत्ति में फंस जाता है और चित्त ही पाप से भागता है, चित्त ही पुण्य होता है। चित्त ही अशुद्ध और शुद्ध है। कोई किसी को बचा नहीं सकता।'

पाप

↓

शुद्ध चित्त→ व्यक्ति का अपना चित्त ←अशुद्ध चित्त

↑

पुण्य

वाईवल में भी इसी प्रकार की चिंतन-प्रक्रिया मिलती है। सेंट जॉन के गास्पैल के आरंभ में आता है—

'आरंभ में शब्द था, शब्द प्रभु के पास था, प्रभु ही शब्द था। आरंभ में शब्द प्रभु के पास था।'

आरंभ

↓

शब्द ↷ ↶ शब्द

प्रभु

शब्द ↷ ↶ शब्द

↑

आरंभ

यहां भी चक्रवत, ध्रुवीकृत पदावली का दर्शन होता है। मौन आरंभ, मौन, मुखर आरंभ का ध्रुव शब्द। यह वक्ता अर्थात् प्रभु का ध्रुव है। 'प्रभु', चिंतन का केंद्र-विंदु है, उससे विपरीत क्रम में मौन-ध्रुव पर वापसी होती है, यानी मौन लौट आता है।

पाश्चात्य युक्तियुक्त, द्वंद्वात्मक, त्रिकोणात्मक चिंतन निदेशनात्मक चिंतन है, उसके सामने एक प्रयोजन होता है। वह एक चरमावस्था की ओर सन्नद्ध रहता है। वह एक ऐसा चिंतन है जो विकसित होता है। रओ वर्णन करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः यह केवल संयोग की बात नहीं है कि अधिकांश पाश्चात्य संगीत विवरणात्मक है। यहां हमारा संकेत आरंभ काल के ग्रामीण गीत से लेकर लिस्त्सत (Liszt), बेर्लिओत्स (Berlioz) और रिचार्ड श्ट्राउस (Richard strauss) की ओर है।

इसके विपरीत अंतर्ज्ञानीय चक्रवत्-चिंतन समग्र की कल्पना करता है। वह आत्मपूरक तथा बहिर्मुखी न होकर अंतर्मुखी है।

चेतना की दो मूलतः भिन्न प्रवृत्तियों ने दो भिन्न प्रकार की संगीत संस्कृतियों को जन्म दिया। उनको अनिवार्यतः विरोधी नहीं परिपूरक तत्व मानना चाहिए।

यह अब अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि हमें विश्व का समग्रदर्शन करना होगा और जगत में एक ही संस्कृति रह जाएगी—मानव-संस्कृति।

पौवर्त्य चिंतन और भावना तथा पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता को यदि अलग-अलग देखें तो मालूम होगा कि वे दोनों एक समग्र संस्कृति की अंग हैं। यदि हम दोनों संस्कृतियों की परस्पर-निर्भरता को ध्यान में रखें तो उन दोनों का और समूची मानव-जाति का समग्र स्वरूप समझने में सुगमता होगी।

मेरा विश्वास है कि हम एक ऐसे युग में प्रवेश करने जा रहे हैं जहां पूर्व और पश्चिम दोनों की चेतना-प्रवृत्तियों में निर्णायक परिवर्तन होंगे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसके प्रारंभिक लक्षण मानवीय गति-विधि के प्रत्येक क्षेत्र में, तथा विशेषतः हमारे अधुनातन वैज्ञानिकों और कलाकारों की कृतियों में दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पश्चिम पर पूर्व का और पूर्व पर पश्चिम का प्रभाव चेतना की उस संरचना के विकास की ओर इंगित करता है जो स्वभावतः समस्त सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तथा राजनीतिक अभिव्यंजनाओं के प्रति समाकलनकारी दृष्टिकोण अपनाती है। प्रख्यात जर्मन भौतिकीविद् हाइजनवर्ग ने अपनी पुस्तक 'भौतिकी और दर्शन, में इस बात पर वल दिया है कि 'शास्त्रीय भौतिकी के क्षेत्र में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जापान की महान देन यह है कि उसने सुदूर-पूर्व के पारम्परिक चिंतन और क्वांटम सिद्धान्त के दार्शनिक तत्वों के बीच एक निश्चित सम्बन्ध जोड़ दिया है। वे लिखते हैं कि, 'हो सकता है कि हमारी शताब्दी की चंद प्रारम्भिक दशाब्दियों में प्रचलित पाश्चात्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिंतन की अनाड़ी पदार्थवादी पद्धति से अपरिचित व्यक्ति क्वांटम सिद्धान्त की वास्तविकता के साथ अपेक्षाकृत सुगमतापूर्वक परिचित हो पाये।'

संचार के नये और तीव्रतर साधनों तथा पारस्परिक-निर्भरता की बढ़ती हुई चेतना ने संसार के व्यक्तियों को पहले की अपेक्षा अधिक समीप ला दिया है। राष्ट्रीयता, धार्मिक विवधता, दलीय भावना और सांप्रदायिकता ह्रासोन्मुख हैं और हमारी चेतना में जगत की समग्र चेतना को अधिकाधिक मान्यता मिलने लगी है।

पूर्व और पश्चिम का महान संघर्ष अब एक वास्तविक रूप ग्रहण करने को है।

पौर्वत्य और पाश्चात्य चिंतन एक नयी समाकलनकारी संस्कृति की आधारशिला बनेंगे। यह नयी संस्कृति मानवजाति की एकता और एक नये मानवतावाद का आश्वासन देगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य संगीत का परिचय : सौन्दर्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण

महान जर्मन चित्रकार फ्रान्त्सोमार्क ने १६१५ में कहा था कि बीसवीं सदी में हम विचित्र कल्पनाओं, नये बिंबों और नयी ध्वनियों के बीच जियेंगे। जिन लोगों में अतिरिक्त ऊष्मा नहीं होगी, वे संवेदन-शून्य हो जायेंगे और उन्हें जड़ता के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देगा। वे अतीत की स्मृतियों में, उसके खंडहरों में वापस चले जायेंगे, उनमें छिप जायेंगे।'

हमारे युग में नयी कला के प्रयोग ने इन शब्दों को सही सिद्ध कर दिया है।

बीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य संगीत को समझने के लिए हमें इस शताब्दी के समूचे पाश्चात्य चिंतन और अनुभूति को समझना होगा, क्योंकि हमारे युग के संगीत पर उनका प्रतिबिम्ब है और वे उसके सार तत्व का निर्धारण करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब मैं बीसवीं शताब्दी के समकालीन संगीत का उल्लेख करता हूं तो मेरा अभिप्राय उस संगीत से होता है जो नयी पीढ़ी के रचनाकारों ने तैयार किया है। यह संगीत ध्वनिरूपों के अनपेक्षित विकासक्रम के सिरे पर अवस्थित है। यह विकासक्रम प्रथम महायुद्ध के वाद स्ट्राविन्स्की श्युनवर्ग, वेब्रेर्न, वारटोक और हींडेमिथ की रचनाओं से उत्पन्न हुआ और उसकी चरम पराकाष्ठा तथाकथित द्वादस-स्वर-संगीत में हुई। द्वादश-स्वर-संगीत वहुरंगी रचनाओं में से निकला।

वहुरंगी रचना से मेरा तात्पर्य है द्वादश-स्वर-संगीत का समस्त संगीत-विषयक विन्दु-परिमाणों तक विस्तार। इन विन्दु-परिमाणों में अवधि. उत्कटता, स्वरमान, वर्ण तथा सघनता आदि का समावेश होता है। वहुरंगी रचना में समस्त स्वर, संलय, अवधियां, संचरणशील प्रतीक, वाद्ययंत्र आदि का संगठन एक अनुक्रम में होता है और यह रचना में आद्योपांत वना रहता है।

हमारे युग के पाश्चात्य संगीत के प्रतिनिधि के रूप में हमें सवसे पहले पियेरे वाउलेत्स, क० ह० श्टाकहाउज़न, हेनरी पाउसेओर, लुईगी नोनो, लुसिआनो वोरिओ, जान कागो तथा उन अन्य रचनाकारों का उल्लेख करना होगा जिन्होंने परम्परागत और इलेक्ट्रॉनिक साधनों का एक साथ प्रयोग किया।

पाश्चात्य सांस्कृतिक जीवन के इतिहास में तीन सामान्य लक्षण चिन्तन के सभी क्षेत्रों में मिलते हैं :

१. काल-धारणा का एक नया मूल्यांकन,
२. युक्तियुक्त द्वैतवाद, और द्वन्द्ववादी चिंतन पर विजय की चेष्टा,
३. जगत् को अस्थिर-सार्वभौम, सभी क्षेत्रों में एक निश्चित प्रयोजन की ओर अभिमुख और तर्कातीत अस्तित्व के रूप में देखने का प्रयास।

कला, अपने उदयकाल के चिन्तन और भावनाओं को स्पंदनमापक यन्त्र की भांति अभिव्यक्त करती है। अतः यह स्वाभाविक है कि इन तथ्यों ने हमारे समकालीन पाश्चात्य संगीत की संरचना और उसके सारतत्व को मौलिक रूप से निर्धारित किया है।

संक्षेप में,जा कहा सकता है कि समकालीन पाश्चात्य संगीत में तीन प्रधान प्रवृत्तियां काम कर रही हैं—

१. काल का नये ढंग से मूल्यांकन और उसको नये ढंग से समझने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रयास,

२. द्वैतवाद और द्वंद्ववादी सिद्धांत पर आधारित परम्परागत रचना-पद्धति पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा,

३. एक तर्कातीत अभिव्यंजना शैली के सृजन का प्रयोग।

श्ट्राविन्स्की की वहुलयात्मक और वहुछंदात्मक रचनाओं के समय से समकालीन पाश्चात्य संगीत रचनाओं में काल-विषयक प्रयास स्पष्टतः सुनाई पड़ते हैं।

वहुलयात्मक और वहुछंदात्मक रचनाओं से हमारा अभिप्राय उन रचनाओं से है जिनमें विभिन्नलयों और छंदों की वंदिशें एक साथ की जाती हैं।

वार्टोक अथवा विला लोवोस श्टाकहाउज़न की काल-माप (त्सा-इटमासे)नामक रचना में वाउलेत्स की श्ट्रुश्टुर रचना और नयी पीढ़ी के अनेक संगीतकारों की रचनाओं में यही वहुलयात्मकता और वहुछंदा-त्मकता है।

महान समकालीन संगीतकार जव निजी संगीत सम्वन्धी अनुभवों के वारे में वोलते हैं तो यह वात ज़ाहिर हो जाती है कि वे काल की समस्या के साथ जूझ रहे हैं। इससे पहले यह समस्या इस रूप में सामने नहीं आई थी। श्ट्राविन्स्की की दृष्टि में संगीत-रचना का मूल तत्व, "समय और कालक्रम की एक सुनिश्चित संगीत-व्याख्या में निहित है, और संगीत की कलामय रचना को उसकी तर्क निष्पत्ति माना जाना चाहिए, यही संगीत-कविता है।" श्ट्राविन्स्की के एक अन्य कथन से यह वात ज़ाहिर होती है कि वह काल के तत्व को असाधारण महत्व देता है। वह आत्मकथा, (Chronik meines Lebens) में लिखता है कि, 'संगीत मनुष्य और काल के वीच एक व्यवस्था स्थापित कर देता है।' यह व्यवस्था-संचार की व्यवस्था है।

श्ट्राविन्स्की की कुछ रचनाओं के वारे में आन्जेरमेट ने एक वक्तव्य में कहा है कि, 'श्ट्राविन्स्की के संगीत में समय को साक्षात रूप ग्रहण करते हुए देखा जा सकता है।'

प्रश्न यह है कि यह काल किस प्रकार का है। इस प्रश्न का उत्तर उस परिभाषा के द्वारा दिया जा सकता है जो शेरशन ने अपनी पुस्तक (Von Wesender Musik) में दी है। उसने मात्रा और लय की तुलना करते हुए लिखा है, "मात्रा अथवा छंद एक ऐसी युक्तियुक्त व्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्था है जो काल के विरुद्ध विद्रोह करती है। लय की जीवंत प्रक्रिया है जो काल में विलीन हो जाती है।"

इस परिभाषा के आधार पर संगीत में तीन प्रकार के काल का उल्लेख किया जा सकता है :

१. चमत्कार काल: यह लयात्मक, स्वाभाविक, मूल काल है जो विशेषत: अफ्रीका के जादुई संगीत में सुनाई पड़ता है।

२. मानसिक, सार्वभौम काल : यह विशेषत: भारतीय शास्त्रीय संगीत में पाया जाता है।

३. युक्तियुक्त, परिमापित काल : इसे हम सहज-काल: भी कह सकते हैं। यह काल-धारणा पाश्चात्य संगीत की वैराक, शास्त्रीय और स्वच्छंदतावादी शैलियों में मिलती है।

काल के इन तीन प्रकारों में एक चौथा प्रकार भी शामिल किया जा सकता है, जिसमें चमत्कारिक गुण होता है। यहां मेरा प्रयोजन काल-निरपेक्षता से है, अर्थात् मनुष्य की चेतना में काल की प्रतीति का अभाव। इस अन्तिम स्थिति का बोध हमें आदिम-संगीत से मिलता है जिसकी खोज कलात्मक और वैज्ञानिक रूप में पिछली दो दशाब्दियों में हुई है। वह अनादि और अनन्त है। वह अकस्मात् शुरू हो जाता है और एकाएक रुक जाता है।

समकालीन पाश्चात्य संगीत के सभी तत्वों से ऐसा भी संकेत मिलता है कि अब वह शास्त्रीय तथा स्वच्छंदतावादी संगीत में विद्यमान सहज, मात्रात्मक और परिमापित काल की धारणा का अतिक्रमण करने वाला है। उसकी अभिव्यंजना काल-निरपेक्ष संगीत के निकट पहुंचती जा रही है; वह काल से मुक्त रहकर स्वयं अपना परिनिर्धारण करती और कालहीनता की विकसित चेतना से अभिभूत होती जा रही है।

काल से मुक्ति अथवा कालहीनता-विकसित-चैतन्य समकालीन पाश्चात्य संगीत का एक निर्णायक तत्व है और वास्तव में तथाकथित चतुर्थ आयाम का एक पक्ष भी।

आधुनिक पाश्चात्य-संगीत को भली प्रकार समझने के लिए चतुर्थ-आयाम की धारणा को समझना बहुत ज़रूरी है, अत: यहां उसका संक्षिप्त विवेचन करना उचित होगा।

हम एक-आयामी रेखा द्वि-आयामी धरातल तथा द्वि-आयामी अन्तराल अथवा शून्य से परिचित हैं। किन्तु चतुर्थ-आयाम की कल्पना करना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कठिन है, कला पर इसके प्रभाव को समझना और भी अधिक कठिन।

अतः, इस प्रत्यय को समझाने की दृष्टि से मैं यहां चतुर्थ-आयाम का एक सरल उदाहरण दे रहा हूं। मान लीजिए कि हम दरवाज़े के वाहर खड़े सड़क की तस्वीरें खींच रहे हैं। यहां हमारी आंखों को दिखायी देने वाली वास्तविकता त्रि-आयात्मक है। अपने छवि-अंकन में हम उसे द्वि-आयामी वना लेते हैं। दृश्य-भूमिका के नियम हमें इस रूपान्तरण में सहायता देते हैं।

अव हम उसी स्थान की छवि मूवी-कैमरे से उतारें, दृश्य-भूमिका यह है कि सामने एक व्यक्ति गुजर रहा है। उस स्थिति में हम प्रत्येक शॉट को एक-दूसरे पर उतारते चले जाते हैं। इस प्रकार एक घन (क्यूव) की रचना हो जाती है। स्थिर वस्तुएं फिल्म पर आलंव अवस्था में और चलती हुई वस्तुएं कर्णवत् अंकित हो जाती हैं। स्थिर और चंचल—सभी पदार्थ संयुक्त हो जाते हैं तथा काल के चतुर्थ-आयाम का प्रतिनिधित्व हो जाता है। काल त्रि-आयामी अन्तराल में घनीभूत हो जाता है।

पिकासो के चित्र (Testa de Bombina) में हमें एक ही पक्ष नहीं दिखायी देता. सामने और वगलों के दृश्य भी दिखते हैं, अर्थात् चित्रित व्यक्ति की अनेक भौतिक अवस्थाओं का दर्शन एक साथ हो जाता है।

शुरू में तो यह सव असंगत दिखायी देता है, लेकिन वाद में वह उन भौतिक और अन्तरालीय तत्वों का परिपूरक परि-स्थानीकरण दिखायी देने लगता है जिनका प्रतिनिधित्व एक ही धरातल पर, एक ही काल में साहसपूर्वक किया जाता है।

इससे उस व्यक्ति को जिसका कि प्रतिनिधित्व किया गया है, एक परिपूर्ण और दर्शनीय चरित्र प्राप्त हो जाता है। यह मूलभूत रूप से सौन्दर्याकांक्षा की वौद्धिकता का नहीं वरन् काल की संहति का प्रतिफल है।

वौद्धिक-जीवन के उन अन्य क्षेत्रों की भांति, जिनमें काल को अभिव्यक्ति की तत्कालीन व्यवस्था अथवा क्षेत्र में साकार किया जाता है, संगीत में भी अन्ततः उन व्यवस्थाओं का नाश हो जाता है। चित्रकला के क्षेत्र में, विनष्ट व्यवस्थाओं में से एक दृश्य-फलक है।

संगीत के क्षेत्र में सुर-संगति की व्यवस्था का विनाश हुआ। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुर-संगति अथवा सुर-भाषा पुनर्जागरण काल से लेकर अब तक पाश्चात्य संगीत पर छाई रही है।

यदि सुर-संगति से हमारा अभिप्राय पुनर्जागरण के वाद के संगीत के प्रमुख लक्षणों से है तो हम कह सकते हैं कि वह द्वंद्वात्मक विषमताओं — दीर्घ और ह्रस्व, समस्वरता और विस्वरता, मूल-स्वर और अधिरोही स्वर, संलय और सुरीलापन, समध्वनिमूलकता तथा प्रतिरोधी-स्वर, एवं एक मूल स्वर की प्रधानता में निहित हैं। समस्त संगीत-अभिव्यंजनाएं इसी मूल स्वर से सम्बन्धित रहती है। यह अष्टक की ध्वनि-सीमा के भीतर उभरता है और तिकड़ी में जाकर चरम शिखर पर पहुंचता है।

द्वंद्वात्मक विषमताओं से हमारा प्रयोजन उन विषमताओं से है जो दो प्रतिरोधी सिद्धान्तों के अस्तित्व को स्वीकार करने वाले दार्शनिक चिंतन पर आधारित होती है। इन विषम तत्वों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं : काया और आत्मा, आत्मा और पदार्थ और दिक् और काल।

चतुर्आयामी वास्तविकता के उदाहरण में उल्लिखित घन में जिस तरह समस्त तत्व एकाकार हो जाते हैं, उसी प्रकार चतुर्थ-आयाम के प्रभाववश समकालीन पाश्चात्य संगीत में समस्त पूर्ववर्ती द्वंद्ववादी तत्व सम्मिश्रित हो जाते हैं। समस्वरता और विस्वरता, मूलस्वर और अधिरोही स्वर, दीर्घ और ह्रस्व ताल, समध्वनिमूलकता और प्रतिरोधी-स्वर, स्वर तथा विराम और विशेषतया दीर्घ और ह्रस्व स्वर संगीत की एक ध्वनि में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार स्वर-संगति की चरमावस्था प्राप्त हो जाती है। अष्टक के स्वर की तरह एक केन्द्रिय स्वर से सम्बन्धित नहीं रहते दीर्घ और ह्रस्व भी नहीं रहते। सुरसंगति का समाहार परा-सुरसंगति में होता है। यह सब चतुर्थ-आयाम अर्थात् पराचेतना के माध्यम से होता है।

सुरसंगति का अर्थ है संगीत सम्बन्धी दृश्य-भूमिका अर्थात् एक-तृतीय आयाम की सिद्धि।. यह संयोग की बात नहीं है कि सुरसंगति पद्धति यूरोप के उसी क्षेत्र में प्रकट हुई जिसमें दृश्य-भूमिका का पहले-पहल अन्वेषण हुआ था। यह पद्धति सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में फ्लैंडर्ज़ में उत्पन्न हुई।

परा-सुरसंगति का अर्थ है सुरसंगति की चरम-परिणति, काल-चेतना के जागरण द्वारा अन्तराल की चेतना का अतिक्रमण। चतुर्थ-आयामी अन्तराल के माध्यम से त्रि-आयामी अन्तराल का विलय हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परा-सुरसंगतिवान संगीत में सम्बन्धों के निश्चित सूत्रों का परित्याग कर दिया जाता है। सब कुछ काल बन जाता है। काल गति और प्रवाह बन जाता है। संगीत अन्तराल-व्यवस्था की भांति नहीं रह जाता। परम्परागत शास्त्रीय और स्वच्छंदतावादी संगीत में यह भ्रांति बनी रहती थी। वह अन्तरालीय-कालमूलक आधार पर निर्मित एक सतत प्रक्रिया बन जाती है।

पाश्चात्य संगीत के क्षेत्र में होने वाला यह क्रांतिकारी और वृहत संरचना-मूलक परिवर्तन आधुनिक भौतिकी के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों की ओर ध्यान खींचता है। अब तक जिन पदार्थों को ठोस, स्थायी, सघन और अपने आप में पूर्ण माना जाता था, वे सब संचरणशील, मुक्त, चल और पारदर्शी बन गये हैं। स्थिर अन्तराल विलीन हो गया है, समूची युक्तियुक्त व्यवस्था टूट कर बिखर गई है। दीर्घ और ह्रस्व के द्वंद्व की यह चरम परिणति भौतिकी में ऊर्जा और पदार्थ के द्वंद्ववाद की चरम-परिणति की छाया मानी जा सकती है।

समकालीन सांस्कृतिक जीवन के समस्त क्षेत्रों में द्वैतपरक-द्वंद्ववादी चिंतन के अतिक्रमण की इसी प्रवृत्ति का दर्शन होता है। मैं वर्तमान भौतिकी की उस धारणा के बारे में सोच रहा हूं जिसके अनुसार दिक् और काल, ऊर्जा और पदार्थ के बीच एक समरूपता की स्थापना हो जाती है। यह धारणा आइंस्टाइन और प्लोक के तर्कों की ओर ध्यान दिलाती है।

यहां इस धारणा का भी उल्लेख किया जा सकता है कि प्रकाश और लवाणु debroglie के ondulatory सिद्धान्त के अनुसार दोनों तरंगें हैं। आधुनिक जीव-विज्ञान में जैविक और अजैविक और आत्मा और शरीर की एकता के सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण हैं। जैविक-भौतिकी और मनो-दैहिक विज्ञान जैसे नये विज्ञानों का विकास हो रहा है जो दो विरोधी माने जाने वाले विज्ञानों के बीच एकता स्थापित करते हैं। ये नयी चिंतनपद्धति की अभिव्यंजनाएँ हैं।

सेज़ाँ के समय से चित्रकला में विषयवस्तु और चित्रकार तथा दिक् और काल में एकरूपता का चित्रण किया गया है। आधुनिक पाश्चात्य स्थापत्य में भीअंतरंग और बहिरंग के बीच अधिक उत्कट समावेशन हुआ है। यहां मेरा अभिप्राय कांच-संरचना, अंतरंग में प्रकृति के समावेश, विभिन्न रंगों की दीवारों तथा अंतरंग और बहिरंग के बीच एकता स्थापित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने वाली अन्य प्रवृत्तियों से है।

यह नये संगीत का निर्णायक विन्दु है कि संगीत के किसी भी तत्व विशेषतः काल-विषयक तत्व—जैसे परिमाप, मात्रा, लय का अब युक्तियुक्त रीति से परिमापन नहीं होता। ध्वनिपक्ष समस्त युक्तियुक्त तत्वों से मुक्त प्रतीत होता है। मैं 'प्रतीत' शब्द का प्रयोग जानबूझकर कर रहा हूं, इसका कारण यह है कि युक्तियुक्त अथवा परिमेयों का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ है, वे चतुर्थ-आयाम में विलीन हो गये हैं। इसका अर्थ यह है कि या तो उनका अतिक्रमण हो गया है या उनकी चरम परिणति हो गई है।

समकालीन पाश्चात्य संगीत का स्वरूप परा-परिमेयात्मक तर्कातीत है। वह युक्तियुक्त और अयुक्तियुक्त चिन्तन और भावना को एक व्यापक आयाम में समाकलित कर देता है और इस प्रकार बौद्धिक जगत को उस उन्नयन की ओर ले जाता है जो मानव-स्तर का अतिक्रमण करके अतिमानवीय चेतना में ले जाता है।

प्रत्येक चतुर्आयामी स्थिति का ढांचा परा-परिमेयात्मक तर्कातीत होता है। इसका कारण यह है कि उसमें कुछ भी स्थिर नहीं होता तथा अन्तराल और व्यवस्था के कोई बन्धन नहीं होते। यही कारण है कि इस संगीत की अभिव्यंजना में अस्थिर और अपूर्वानुमानित लक्षण मिलते हैं जिनमें अभिव्यक्ति सुरीलेपन, व्यवस्था और एक पूर्व-निश्चित सुर-संगति के निश्चित आधार का अभाव होता है।

ये समस्त लक्षण इस प्रकार के संगीत को उन सब लोगों के लिए असहनीय बना देते हैं जो सृजनात्मक प्रक्रिया के लिए युक्तिसंगतता को अपरिहार्य मानते हैं। कोई भी व्यक्ति जो ऐंद्रिक-अनुभूति भावना और चिंतन की इस नयी पद्धति से परिचित नहीं है, युक्तिसंगतता की रीति को सर्वश्रेष्ठ मानता है और सुरक्षा की आवश्यकता महसूस करता है, वह इस नयी पाश्चात्य कला से निराश ही होगा।

नयी पश्चात्य कला एक ऐसी अभिव्यंजना-प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है जो मनुष्य की बौद्धिक रक्षा की पारदर्शिता को मुक्त-रीति से प्रकट होने का अवसर देती है। सुरक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के लिए यह जरूरी नहीं है कि वे उसे एक विचार या आकार में मूर्त रूप देने की चेष्टा करें तथा उसे इस प्रकार प्रस्तुत करें जिससे कि वे अपने आपको इसके माध्यम से ऊंचा उठा सकें। उनके सामने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी कोई मजबूरी नहीं होती। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नयी पाश्चात्य कला और विशेषतः संगीत इस मुक्तिकरण को प्रोत्साहित करते हों।

वहरहाल, इसका यह अर्थ नहीं है कि यह संगीत अनिवार्य तौर पर 'सुंदर' होता है। जहां परा-परिमेयात्मक अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन करना हो, वहां द्वंद्वात्मक रूप में 'असुंदर की विरोधी सुंदरता' का सिद्धांत अप्रासांगिक है। इसका अभिप्राय सौंदर्य का परित्याग नहीं है। अभी तक यह तथाकथित सौंदर्य इस युग की उस बौद्धिक प्रवृत्ति अथवा परम्परा या भावावेश द्वारा निर्धारित उस व्याख्या तक सीमित नहीं है जिसको अत्यंत अपर्याप्त अर्थों में समध्वनिमूलक या प्राकृतिक कहा जाता है।

नवीन पाश्चात्य संगीत न सुदर है, न पहले के अर्थ में असुंदर ही। वह उसके परा-परिमेयात्मक चरित्र की अभिव्यक्ति है क्योंकि यदि उसका उद्‌गम द्वंद्ववादी सिद्धान्त में खोज लिया जाता तो वह परा-परिमेयात्मक नहीं हो सकता था। नवीन संगीत बौद्धिक है, वह काल को सघन स्वरूप प्रदान करता है। यहां सघन का अर्थ मूर्त, यानी अमूर्त का उलटा नहीं है। इसी प्रकार हम मात्रा और गुण, क्षमता और अभाव की स्थिति को एक-दूसरे की प्रतिलोम नहीं मान सकते। वे एक विकासशील चेतना की विभिन्न अवस्थाओं को प्रतिविंवित करने वाली त्वरा अथवा सघनता की अभिव्यक्ति मात्र हैं। अतः, सघन को हम अमूर्त का मूर्तीकरण नहीं कह सकते। वह आध्यात्मिक तत्व को हमारी चेतना के साथ एकाकार करने अथवा सघन करने की प्रक्रिया है।

इस नये संगीत के विकास और विस्तार को समझने और उसका अनुभव लेने के लिए एक नये प्रकार की चेतना की आवश्यकता होगी। युक्तियुक्त रीति से देखने का अर्थ है द्वन्द्ववादी दर्शन। परा-परिमेयात्मक रूप में देखने का अर्थ है समग्र को परस्पराश्रित तत्वों की संरचना के रूप में देखना। यह जीवनीशक्ति, मनस् अथवा मनीषा की युक्तियुक्त चिंतन-प्रक्रिया नहीं है। इसके विपरीत यह एक समाकलित आध्यात्मिक प्रक्रिया है।

अभी तक आध्यात्मिक तत्व की उपलब्धि, रहस्यात्मक आवेग कल्पना अथवा मानसिक आभास में ही हुआ करती थी, किन्तु नयी पाश्चात्य कला यह मान कर चलती है कि आध्यात्मिक-तत्व का अनुशीलन, अनुभव और चिंतन सामान्य तौर पर आवेशात्मक, या काल्पनिक-स्तर पर नहीं किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाना चाहिए। उसको सघन रूप में चेतना के साथ संयुक्त मानना चाहिए।

यह बात स्पष्ट है कि इस समाकलित तथा सम्पूर्ण -समाकलनकारी परा-परिमेयात्मकता की अवस्था को अनुभूति की परिमेयात्मक रीतियों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। जैसा कि मैं कह चुका हूं, नयी पाश्चात्य कला के लिए एक नयी चेतना की आवश्यकता है। इसका अर्थ है एक नया मानव। नये मानव से मेरा अभिप्राय समाकलित व्यक्तित्व वाले मनुष्य, आध्यात्मिक मनुष्य से है जो द्वैतबुद्धि से नहीं देखता वरन् जिसका दृष्टिकोण समग्रतामूलक और समाकलनकारी है। हमारे ज़माने के सबसे अधिक महत्वपूर्ण और दूरदृष्टि-सम्पन्न पाश्चात्य संगीत-रचनाकार स्ट्राविन्स्की ने भी इस नये मनुष्य के बारे में चिन्तन किया है। (Musikalisha Poetik) नामक पुस्तक में उसने लिखा है कि 'मुझे संगीत के किसी सिद्धान्त में तभी रुचि हा सकती है जब वह समग्र मानवीय व्यक्तित्व को पेश करे। मेरा अभिप्राय ऐसे मनुष्य से है जिसकी समस्त इंद्रियां सक्रिय और सचेत हैं, जिसकी समस्त मानसिक शक्तियां सजीव हैं तथा जिसकी बुद्धि पूर्णतया सशक्त है। केवल यह समाकलित मनुष्य उस उच्चतर चिन्तन की क्षमता से सम्पन्न है जिसका हम अध्ययन करना चाहते हैं।'

अविभक्त व्यक्तित्व वाला, शून्य तथा मानव और जगत के अस्तित्व के आध्यात्मिक स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ भी न देखने वाला मनुष्य उस समग्र अथवा परिपूर्ण का दर्शन कर लेता है जो मनारम्भ है, यानी जो सृष्टि के आदि से पहले था और जो प्रत्येक वस्तु में विद्यमान यानी प्रकाशमान है।

स्वर्ग और नर्क कहीं नहीं होते। अहं और जगत का भी अस्तित्व नहीं है। सान्निध्य और परा-अवस्था जैसा भी कुछ नहीं होता। होता है केवल अनुभवगम्य सम्पूर्ण जगत। यह सम्पूर्ण के भीतर आदिम और कालातीत रीति से विद्यमान है। यह स्थिति आत्मन् के अहम्मुक्त स्वरूप जसी है।

कला आध्यात्मिक तत्व का सघनीकरण है। नयी कला की पारदर्शिता में हमें आध्यात्मिक तत्व का दर्शन होता है। रिक्तता परिपूर्णता में परिवर्तित हो जाती है और ध्वनि मौन में। हम परिपूर्ण का संरक्षण करते हैं और परिपूर्ण हमारा संरक्षण करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगोत सौन्दर्य-शास्त्र के नये आधार और भाषा शास्त्रीय सिद्धांत के नियम

हमारी तकनीकी दुनिया की सीमित संरचनात्मक व्यवस्था के भीतर कला एक झुकाव अथवा रुझान के बजाय एक बुनियादी, भावनात्मक अथवा बौद्धिक रुचि जागृत करती है या नहीं? यह एक महत्वपूर्ण समस्या है और कला तथा कलात्मक रचना के बारे में सारा विवाद इसी समस्या के चारों ओर केंद्रित हो गया है।

बहुत से लोग कला को बौद्धिक स्वतंत्रता की सर्वोच्च अभिव्यंजना मानते हैं। निस्सन्देह कला और विज्ञान को समृद्ध करने वाले समस्त तत्व इस धारणा के अनुरूप नहीं हैं। बौद्धिक सृजन की व्यापक शृंखला बुद्धि की सहज सिकुड़न को नहीं रोक सकती। कला और विज्ञान के विकास से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये सिकुड़नें निरंतर बढ़ती जा रही हैं। यह धारणा विशेषत: विज्ञान के विषय में बहुत सही है क्योंकि उसकी उपलब्धियां अनिवार्यत: सिद्धान्तों में निहित होती है। इन सिद्धान्तों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूल-सार प्रकृति के पर्यवेक्षण से प्राप्त होता है फिर तकनीक में पुनर्स्रजित किया जाता है। हमारे युग की कला में भी, जो विज्ञान के साथ घनिष्ठतापूर्वक सम्वन्धित है, ये सिकुड़नें अधिकाधिक दृष्टिगोचर होती हैं। साधारणतः ऐसा लगता है कि शैलियों और सौंदर्यवोध की प्रवृत्तियों का परिवर्तन, स्रजन और स्वतंत्रता के वीच पुरातन और परंपरागत सम्वन्ध को स्रजन और सिकुड़न के वीच नवोदित सम्वन्ध के विरुद्ध खड़ा करके वार-वार अवहेलनापूर्वक किये जाने वाले शोषण की अभिव्यंजना है। इसकी परिणति सिद्धान्त की दुहाई में अर्थात् वौद्धिक दृष्टि से औचित्य सिद्ध करने में होती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वौद्धिक दृष्टि का औचित्य सिद्ध करने की कामना उस सिकुड़न का ही प्रतीक है जिसके तहत तकनीकी दुनिया में वौद्धिक कृतियां सृजनात्मकस्व रूप प्राप्त करती हैं।

समस्या यह है कि इस प्रयोजन-परक और तकनीकी जगत में कला और विशेषतः संगीत के अस्तित्व का आधार स्थान, और कर्म क्या होगा ? यह एक तथ्य है कि इस तकनीकी-जगत की अभिवृद्धि के लिए कलात्मक सृजन के वजाय वैज्ञानिक सृजन की आवश्यकता है। इस तथ्य से अस्तित्व का प्रश्न उठता है। कला अपनी समग्रता में, हमारी दुनिया के भीतर वास्तविकता के रूप में जिन्दा रह सकती है या महज कल्पना के रूप में ? उसका स्वरूप सृजनात्मक हो या केवल अनुकरणात्मक ? प्रश्न यह है कि हमारे युग में कला का कार्य क्या है या, उसे क्या कार्य सौंपा जा सकता है ?

सूचना और संचार के आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार वैज्ञानिक और कलापरक उपलब्धियां परिणामों की नहीं, सृजनात्मक प्रक्रिया की दृष्टि से कम से कम सैद्धान्तिक और मात्रात्मक रूप में एक-जैसी हैं। इसका अर्थ यह है कि युक्ति की ओर से द्रष्टा को प्राप्त होने वाली सूचना हमेशा नवीनता के वारे में होती है तथा वह 'ज्ञात' के साथ प्राप्त होती है। इसका कारण यह कि ज्ञान के विना 'नवीन' की जानकारी दी ही नहीं जा सकती। सौंदर्यवोध पर लागू होने वाली एक अधिक निश्चित परिभाषा के तौर पर यह कहा जा सकता है कि किसी संदेश में जो कुछ नवीन है उसे ही सूचना कहा जाना चाहिए, ज्ञात को पुनरावृत्ति अथवा अतिरेक माना जाना चाहिए।

सूचना के सिद्धान्त के अनुसार द्रष्टा को घटनाओं की सूचना,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संभावनाओं के कोष से अथवा युक्ति द्वारा किये गये चुनावों में से दी जाती है। यदि संभावनाओं अर्थात् कोष की संख्या वड़ी हो तो चुनावों की संख्या भी वड़ी होगी, अतः सूचना की मात्रा भी वड़ी होगी। द्रष्टा जिन संभावनाओं के आधार पर चयनों के वारे में पूर्वानुमान लगा सकता है, यदि वे कम हों तो उसका अचरज ही अधिक होगा। सांख्यिकी की दृष्टि से अचरज, नवीनता, सूचना तथा असम्भावना की धाराएँ विरलता की धारणा की समानधर्मा हैं। विरल घटना अधिक आश्चर्य उत्पन्न करती है, क्योंकि वह सामान्य घटना की अपेक्षा अधिक मात्रा में सूचना देती है। कलात्मक कृतियों के मूल्यांकन में यह सिद्धान्त वहुत महत्वपूर्ण है।

सूचना शिक्षण है। इस सूत्र के आधार पर कहा जा सकता है कि सूचना की उपलब्धि सीखना है। जैसा कि हम कह चुके हैं, कोई भी नयी वात, ज्ञात के विना नहीं ज़ानी जा सकती, अतः पुरानीवृत्ति को सूचना का पूरक मानना चाहिए। इसके माध्यम से ही युक्ति और द्रष्टा के बीच सम्पर्क सम्भव होता है और उसके विना नयी वात का सचेतन ज्ञान असंभव है। सीखना—सुनना और इंद्रियों के द्वारा महसूस करना भी खोज और पुनरावृत्ति का लाभ उठाने में निहित है। नवीन को ज्ञात के साथ जोड़ दिया जाता है, 'नया' और 'ज्ञात' वह है जो द्रष्टा के लिए नया और ज्ञात हो। अतः नवीन के वारे में दिया जाने वाला संदेश कला की कोटि का ही होता है। पूर्वापेक्षी कलात्मक सृजन संभव तो है लेकिन वह केवल प्रगतिमुखी ही हो सकता है। उसे नवीन का सृजन करना ही चाहिए, नवीन की जानकारी देनी ही चाहिए। वीसवीं शताब्दी से पीछे लौटना संभव नहीं है। डेवुसी, रोफेल, माले और श्युनवर्ग के काल से पीछे जाना हों तो इसके लिए कुछ न कुछ स्वतंत्रता और प्रामाणिकता खोनी ही होगी।

इस दृष्टि से कला के अस्तित्व की समस्या नवीन अथवा सूचना के सृजन की समस्या है। सूचना संचार भी है। अर्थात् सूचना का संचरण नवीन का संचार। प्रत्येक समाज, हमारा तकनीकी जगत भी, वहीं तक संचार में रुचि लेता है जहां तक कि संचार-सभ्यता का निर्माण अथवा संरक्षण करता है। मनुष्य ने सभ्यता की नींव ही नहीं डाली, इसके परे वह उसके संरक्षण के लिए भी विवश है। वह इस स्थापित सभ्यता के संरक्षण, सुधार और नियमन के लिए ज़िम्मेदार है। यह कार्य वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरंतर सब प्रकार की उपलब्धियों के द्वारा करता है।

जो कुछ सूचना अर्थात् सभ्यता के निर्माण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है वह बौद्धिक-क्षेत्र है, और जो कुछ संचार अर्थात् सभ्यता के संरक्षण की भूमिका अदा करता है वह सामाजिक क्षेत्र में आता है।

सूचना— सृजनात्मक उपलब्धि—सभ्यता का निर्माण।

संचार—संचारण अथवा संप्रेषण—सभ्यता का संरक्षण।

कला जिस सीमा तक सूचना और संचार प्रस्तुत करती है, उस सीमा तक वह हमारे समाज में सभ्यता के निर्माण और संरक्षण का कार्य करती है। अन्य कलाओं की भांति संगीत को भी संचार का माध्यम मानना चाहिए। इस प्रकार यह बात समझ में आ जाती है कि आधुनिक सौंदर्य-शास्त्र सूचना और संचार और ऐंद्रिक अनुभूति के मनोविज्ञान और सोशियो-मीटरी पर आधारित है। सोशियोमीटरी समाज में सहानुभूति और द्वेष के संबंध का अध्ययन है। यह बात तय है कि सौंदर्यपरक सूचना की चयन-वृत्ति को तभी समझा जा सकता है जब मनुष्य की जटिल ऐंद्रिक अनुभूति क्षमता और समाज की जटिलताओं के साथ उसके संबंध को समझ लिया जाये।

यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक सभ्यता में यथास्थिति का स्थान नयी उपलब्धियां ले लेती हैं, अर्थात् जगत का विकास इस प्रकार होता है मानो उसका सृजन मनुष्यों ने किया हो, यानी वह कृत्रिम हो। यह प्रक्रिया विशेषतौर पर हमारे तकनीकी-जगत का मूल लक्षण है और यह अमूर्त वास्तविकता से अर्थविषयक वास्तविकता अर्थात् चिंतन के तत्वों की ओर संकेत करने वाली वास्तविकता की ओर सतत संक्रमण की अवस्था है। तथ्यों का स्थान प्रतीक ले लेते हैं और लक्षणों का संबद्ध शृंखला है। जिन वस्तुओं के बारे में पक्का पता चल जाता है उनका सृजन शुरू हो जाता है। समझ सार पर नहीं, संरचना पर, तथा निस्सारण पर नहीं, सृजनात्मक पर निर्भर करती है।

सौंदर्य-शास्त्र के आधुनिक सिद्धान्त के अन्तर्गत भाषा और सौंदर्य-विषयक वास्तविकता को प्रतीक रूप में देखा और समझा जा सकता है। संगीत के बारे में भी यही दृष्टि अपनायी जानी चाहिए। प्रतीकों के संसार में वास्तविक और संचारशील – दोनों प्रकार के प्रतीक होते हैं। वास्तविक प्रतीक केवल अपना प्रदर्शन करते हैं, वह अपने अलावा और कुछ प्रदर्शित नहीं करते। संचारशील प्रतीक अपने से अलग किसी अन्य वस्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की ओर संकेत करते हैं। प्रतीक मनुष्यों के वीच संचार के साधन हैं। गत, लयात्मकता तथा सुरीलेपन से संबंधित सूत्र और संरचनाएं आदि संगीत प्रतीकों की शुरुआत वास्तविक प्रतीकों से होती है। लेकिन संगीत के संदर्भ में वे संचारशील प्रतीक वन जाते हैं। संगीत संवंधी प्रत्येक सूत्र स्वत: एक प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त होता है। इसमें से एक सौंदर्य-विषयक उत्प्रेरक निकलता है जो प्रतीक की आकर्षण अथवा विकर्षण शक्ति पर आधारित होता है।

प्रतीकों का संसार तीन आयामों में विकसित होता है। ये आयाम भाषा और आधुनिक सौंदर्य-शास्त्र की संरचना का निर्धारण करते हैं।

१. प्रतीक संलाप अर्थात्, प्रतीक व्यवस्था से संबंधित होते हैं, उनका अस्तित्व अन्य प्रतीकों के संदर्भ में निश्चित होता है। वे एक शब्द-योजना के अधीन होते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि वे एक शब्दयोजना विषयक आयाम के अन्तर्गत कार्य करते हैं।

२. प्रतीकों का अर्थ और महत्व होता है। यह कहा जा सकता है कि वे अर्थविषयक आयाम के अन्तर्गत कार्य करते हैं।

३. प्रतीकों का एक व्याख्याता, एक-युक्ति और एकद्रष्टा होता है। उनके लिए वे मूल्यवान होते हैं। उनका मूल्य सापेक्ष होता है। वे इस मूल्य के माध्यम से ही प्रभावित होते हैं। यह कहा जा सकता है कि वे प्रयोजनपरक आयाम के अन्तर्गत कार्य करते हैं।

विषय वस्तु

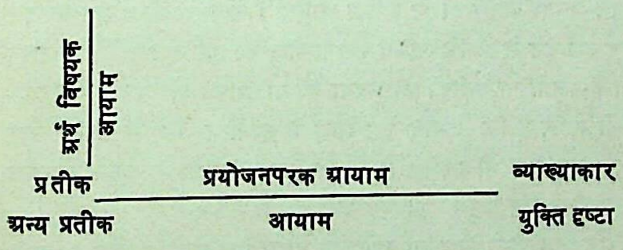

दिक्काल की दृष्टि से प्रतीकों का संयोग, या उनके संबंधों का संयोग अथवा उनके संबंधों का निर्धारण पाठ के माध्यम से होता है। गत, लयात्मक और सुर विषयक सूत्र तथा संरचनाएं संगीत संबंधी पाठ में संयुक्त कर दी जाती हैं। मैंने संगीत संबंधी पाठ में संगीत प्रतीकों के संयोग के आधार को सूत्रवद्ध करने की चेष्टा की है। इसे संगीत विषयक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाठ का सिद्धान्त कहा जा सकता है। मैंने यह कोशिश की है कि यह सिद्धान्त निरपेक्ष और तटस्थ रहे, न कि शैलीगत बंधनों से जकड़ी रचना-पद्धति बन जाये। इससे हम प्रत्येक प्रकार तथा शैली की संगीत कलातिकृ की उस वास्तविकता की पहचान करते हैं जो उसके अपनेनियमों पर आधारित है। इतना ही नहीं, हम उसके पदांशों, शब्दों और अक्षरों आदि का विश्लेपण ठीक उसी प्रकार कर सकते हैं जिस प्रकार कि साहित्यिक पाठ सिद्धान्त के अन्तर्गत किया जाता है। गत, अन्तरा और सुरीलेपन आदि को बुनियादी पाठ-सामग्री कहा जा सकता है और वाक्यांश संवाक्य(प्रोपोजीशन्स)और प्रयोजन आदि को जटिल पाठ-सामग्री। आमतौर पर प्रतीक क्रमों को रेखीय और प्रतीक समूहों को समतल कहा जाता है। विश्लेषणात्मक पाठ सिद्धान्त, पाठों को बुनियादी और जटिल पाठ-सामग्री में विभाजित करता है और प्रतीकों, प्रतीक-क्रमों और प्रतीक-समूहों को सांख्यकीय दृष्टि से वर्गीकृत करता है। संश्लेषणात्मक पाठ-सिद्धान्त निवन्धन है। वह विश्लेपण नहीं, संश्लेपण करता है। वह निर्धारित सामग्री में से संगीतात्मक पाठ खोज निकालता है।

कलात्मक संगीत-कृतियों के मूल्यांकन और विश्लेपण के लिए यह जानना आवश्यक है कि कितने प्रकार के विभिन्न प्रतीक हो सकते हैं और ये प्रतीक संचार-व्यवस्था के भीतर से कितनी गति के साथ संप्रेषित किये जा सकते हैं।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हमें व्यवस्था के लिए आवश्यक न्यूनतम-क्षमता का निर्धारण करना चाहिए। व्यवस्था की क्षमता पर इस प्रकार बल देने से हमारे सामने सूचना-शब्द की एक नयी परिभाषा उभर आती है—संप्रेषित प्रतीकों की संख्या का परिमाप। अत: यह बात महत्व-पूर्ण हो जाती है कि यद्यपि इस शब्द के सामान्य अर्थ में इसके सार और महत्व का भी उल्लेख है तथापि इस परिभाषा के अनुसार केवल मात्रात्मक चरित्र प्रमुख भूमिका अदा करता है।

अचयनकारी-संप्रेषण का गणितीय विश्लेषण सबसे अधिक सरल है, अत: सबसे पहले उस पर ही विचार करें। परिभाषा के अनुसार अचयन-कारी-संप्रेषण में ऐसे प्रतीकों का क्रम होता है जिनका चयन एक के बाद एक और एक दूसरे से स्वतंत्र होता है। तथापि, चाहे प्रतीक अक्षरों, स्वरों, लयों या दूरदृश्य स्क्रीन पर मुद्रित अथवा किसी अन्य माध्यम से निर्मित हों, उपलब्ध-कोष के भीतर उन सबकी संभावनाएं एक-सी ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती हैं। चयन की प्रक्रिया नियमित और सांख्यिकीय होती है और वे यादृच्छिक-चयन का उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त अचयनकारी-संप्रेषण में सूचना-तत्व सबसे अधिक होता है। इसका कारण यह है कि समाज संभावना की स्थिति बचने का मार्ग नहीं देती और ऐसा संभव नहीं है कि कुछ प्रतीक बहुत कम प्रकट हों अथवा प्रकट होने से बच जायें। इस व्यवस्था के लिए साइबरनेटिस्ट और गणितशास्त्री हारवे ने एक कोष से समान संभावना की स्थिति के अंतर्गत प्रतीक चयन में निम्न समीकरण की खोज की है:

सूचना तत्व :

(Hn)max=log 2N पिंड। प्रतीक

यहां N उपलब्ध प्रतीकों अथवा उपलब्ध अक्षरों के लिए प्रयोग में आया है।

सूचना की गति :

(Ht) max=n log 2 N पिंड। सैकिंड

यहां N का प्रयोग प्रति सैकिंड संप्रेषित प्रतीकों की संख्या के लिए हुआ है।

संप्रेपित कुछ सूचना :

H. max=nT log N पिंड

यहां T का प्रयोग संपूर्ण संप्रेषण का काल सैकिंडों में प्रदर्शित करने के लिए है।

इन सब समीकरणों में log 2 बराबर है 3.32 log 16 के।

यह सामान्य संवर्गमान है। 2 आधार है, क्योंकि पिंड-संख्या को सूचना सिद्धांत के अंतर्गत सूचना को बुनियादी इकाई माना गया है। शून्य और एक संख्याओं वाली द्विवर्णी सांख्यिकीय-पद्धति के प्रयोग का एक कारण है। वह इस धारणा में से निष्पन्न हुआ है कि सूचना के सारतत्व के बारे में किये जाने वाले समस्त निर्णय पिंड-चयन में से अर्थात् हां या ना के चयन में से उदय होते हैं।

इसका उदाहरण देने के लिए आमतौर पर ताश का उल्लेख किया जाता है। ३२ पत्तों के ताश में से किसी पत्ते का नाम बताने के लिए कम से कम पांच चयन अनिवार्य होते हैं। सोलह-सोलह पत्तों की दो ढेरियां बनाली जाती हैं। इनमें से एक ढेरी चुन ली जाती है और उसे आठ-आठ पत्तों की दो ढेरियों में बांट लिया जाता है। फिर इनमें से एक ढेरी चुन ली जाती है। और पांचवी बार फिर चयन होता है, यानी दो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्तों की ढेरी में से एक पत्ते का चुनाव कर लिया जाता है। पांच द्विवर्णी निर्णयों अथवा पांच पिंडों के माध्यम से एक पत्ते के चयन की असंभावना का निश्चित रूप से पता लगा लिया जाता है, तथा 32 पत्तों में से प्रत्येक का चयन इसी संभावना के साथ किया जा सकता है।

हार्तले-समीकरण के उदाहरण के तौर पर 12 C स्वरों, C तीव्र, और D इत्यादि की तुलना B से करना उपयुक्त होगा। ये वर्णीय अष्टक का निर्माण करते हैं। यदि सुगम अचयनकारी संगीत की कसौटी पर खरे उतरने के लिए इन ध्वनियों का बेतरतीव क्रम-चयन किया जाये तो हमें हार्तले-समीकरण में निम्न सूत्र प्राप्त होंगे — N=12 और (Hn) max2 log =12=3, 32 log 10. 12=3,=9 पिंड/प्रतीक प्रत्येक प्रतीक के 12 स्वरों की यह अधिकतम संप्रेषणगम्य सूचना है।... सूचना की गति इस बात पर निर्भर करती है कि इन स्वरों को कितना जल्दी-जल्दी उठाया जा सकता है। इससे ही संगीत की लय, गति और संरचनात्मक सुबद्धता कहा जाता है।

अचयनकारी संप्रेषण अपेक्षाकृत कम दिलचस्प होते हैं अतः उनके सूचना-तत्व के बारे में हार्तले के समीकरणों की चेतना लोगों को उनके निर्माण के बीस वर्ष बाद हुई। वह भी तब जब नारबर्ट वानेर और क्लाउडे शानॉन सरीखे गणितज्ञों ने उनके विचारों को केवल अचयनकारी संप्रेषणों में ही नहीं सभी प्रकार के संप्रेषणों में इस्तेमाल करना शुरू किया।

शानॉन ने अपने ऐतिहासिक परीक्षण में प्रत्येक प्रतीक की निर्धारित सम्भावना के आधार पर सूचना तत्वों के परिकलन के लिए अनेक बुनियादी समीकरणों की खोज की। जैसे N प्रतीकों के कोष में। pi अर्थात् i की सम्भावना। यहां i बराबर है 1, 2... के और N है : HN=Si pi log 2 pi पिंड/प्रतीक।

यहां H N बराबर है प्रति प्रतीक सूचना के, pi बराबर है प्रत्येक प्रतीक की सम्भावना के, और N बराबर है सम्भावित प्रतीकों की संख्या के। इससे सूचना की गति निकल आती है : H T=N H और उससे कुल संप्रेषित सूचना : H=n T H N

यहाँ n बराबर है प्रति सैकिंड प्रतीकों की संख्या के और T बराबर, संप्रेषण काल के। इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि :

इन समीकरणों से यह जाहिर है कि किसी सम्प्रेषण में Hn मात्रा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केवल कोष की मर्यादा पर ही आधारित नहीं है वरन् वह कोष से लिये गये प्रतीक की सम्भावना के वितरण पर भी निर्भर होती है। जैसा कि हार्तले के समीकरण में बताया गया है; अचयनकारी संगीत अस्त-व्यस्त और पूर्णतया अव्यवस्थित संगीत होता है। परंतु हमारी उस सुगम व्यवस्था में पूर्णतया अव्यवस्थित संगीत क्या है जिसका विकास केवल स्वरमान चयन की दृष्टि से ही किया गया है? ज़ाहिर है कि यह प्रतीक-कोष में से किसी एक निश्चित धारणा का अकेला और ऐकिक चयन है। अतः यदि स्वर C की सम्भावना का अर्थ इकाई अर्थात् निश्चितता हो जिससे कि PC बराबर 1 के हो, तब समस्त अन्य pi बराबर होना चाहिए O के और H बराबर होगा 0 पिंडों अथवा प्रतीकों के।

यह परिमाण पूर्ण अव्यवस्था के लिए अधिकतम सूचना-तत्व से लेकर पूर्ण व्यवस्था में सूचना के पूर्ण अभाव तक विस्तृत है।

अधिकतम सूचना	कम से कम सूचना
पूर्ण अव्यवस्था	पूर्ण व्यवस्था

व्यवस्था के समस्त नियम, जैसे प्रतिबिंदु, 12 स्वर-नियम अथवा क्रमिक सिद्धांत सरीखे सरचना-संबंधी सिद्धांत, तत्व-अनुक्रम की आवृत्ति के वितरण को बदल देते और उनसे निर्मित प्रतीकों की अप्रत्याशितता को कम कर देते हैं। व्यवस्था के नियम पुनरावृत्ति को लागू करते हैं। इसको इस प्रकार पारिमापित किया जाता है :

$$R = \frac{Hmax - H}{Hmax}$$

इससे निष्कर्ष निकलता है कि तथ्यात्मक सूचना H अधिकतम सूचना H max की अपेक्षा हमेशा कम होती है।

पुनरावृत्ति में निरन्तर पर्यवेक्षण के परिणामस्वरूप ज्ञात-तत्वों के अतिरिक्त संगति, संतुलन, प्रतिबिंदु आदि जैसे समस्त अन्तर्हित अथवा उपार्जित व्यवस्था नियमों का समावेश होता है। पुनरावृत्ति सम्भवतया सूचना से भी अधिक महत्वपूर्ण होती है। पुनरावृत्ति कलात्मक-कृति की शैली का निर्धारण करती है और वह मुख्यतया उस मनोवैज्ञानिक धारणा के बहुत समीप होती है जिसे हम 'सन्देश की बोधगम्यता' कहते हैं। यह बोधगम्यता पुनरावृत्ति के संग समानुपातिक रूप में बढ़ती जाती है। अधिकतम पुनरावृत्त सन्देश (R=1) पूरी तरह बोधगम्य होगा, लेकिन साथ ही वह पूरी तरह अपदार्थ भी होगा क्योंकिव ह द्रष्टा तक कुछ भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संप्रेषित नहीं करेगा, किन्तु यदि उसके वजाय अप्रत्याशितता अपने चरम मूल्य को प्राप्त कर ले तो पहले से यह पता लगाना असम्भव हो जायेगा कि कोष का कौन तत्व किस अन्य तत्व की अपेक्षा श्रेष्ठ है। उस समय सूचना का मूल्य सवसे अधिक हो जायेगा, परन्तु वह इस तथ्य से परे होगा कि ऐसा सन्देश वाधाओं के लिए मुक्त होगा ; क्योंकि उसके भीतर प्रत्येक चुना हुआ तत्व अद्वितीय होगा अर्थात् उसका स्थान कोई अन्य तत्व नहीं ले सकेगा इतना ही नहीं उसको पहचान पाना भी सम्भव नहीं होगा क्योंकि वह द्रष्टा अर्थात् श्रोता में संवेदनशीलता की क्षमता को स्वयंसिद्ध मानकर चलता है। हाँ यह क्षमता अनुभव के आधार पर पुर्वानुमान की क्षमता से कहीं अधिक होनी आवश्यक है। अधिकतम सूचना अर्थात् पूर्ण मौलिकता और अधिकतम पुनरावृत्ति अर्थात पूर्ण अपदार्थता — दोनों दिलचस्पी पैदा करने में अनुपयुक्त हैं, तथा ये दोनों वे सीमाएं हैं जिनके भीतर कलाकार अपने प्रयोजन के अनुसार अधिकतम सम्वन्ध स्थापित करने की कोशिश करता है। अद्यतन खोजों के अनुसार यह धारणा सामने आयी है कि किसी कलात्मक कृति में सूचना-तत्व दस प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। प्रत्येक द्रष्टा अथवा श्रोता तथा प्रत्येक सामाजिक स्थिति के लिए यह सीमा निश्चय ही अदलती-वदलती रहेगी। व्यक्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण और संस्कृति का कार्य द्रष्टा की दृष्टि का परिसीमन है। यह वातावरण जनसाधारण और समीक्षक दोनों के लिए भिन्न होता है। शहरी और देहाती जनता के वातावरण में भी भिन्नता होती है। पौर्वत्य और पाश्चात्य संस्कृतियों में भी वह भिन्न होता है।

अन्य कलाकृतियों की भाँति संगीत-रचनाएं भी न तो पूरी तरह अव्यवस्थित होती हैं. न पूरी तरह व्यवस्थित। वे दोनों सीमाओं के बीच चलती रहती हैं। यह कथन भी तथाकथित पूर्णत: संरचनात्मक अथवा पूर्णत: व्यवस्थित संगीत पर ही लागू होता है। इस प्रकार के संगीत पिछले वर्षों में काफी मात्रा में रचा गया है। इसकी रचना के लिए प्रयोग में आने वाली पद्धति प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक चयन-क्षेत्र छोड़ देती है। इस प्रक्रिया के अनुसार तैयार की गयी कृति की सम्भावना के नियोजित वितरण के वाद तैयार की गयी कृति कहना अधिक सही होगा। यह कथन अधिकांश भाग्य-भरोसे संगीत पर भी लागू होता है। भाग्य-भरोसे संगीत की रचना भी सम्भावना के वितरण की नियोजित व्यवस्था

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आधार पर होती है।

जब तक उन प्रतीकों का कोष, जिनसे इस संगीत की रचना होती है, समान स्तर पर बना रहता है तब तक एक अंश से दूसरे अंश तक औसत एक-जैसा रहता है। सांख्यकीय दृष्टि से इसका प्रत्येक अंश प्रत्येक अन्य अंश के समान होता है। इसके परिणामस्वरूप उन्हें किसी भी क्रम से प्रस्तुत किया जा सकता है, अदला-बदला जा सकता है, पूरी तरह इधर से उधर किया जा सकता है। इससे किसी भी अंश का संगीतमय चरित्र नहीं बदलेगा। अतः परिवर्तन केवल तभी हो सकता है जब प्रतीकों के उपलब्ध कोष की सीमा में परिवर्तन कर दिया जाये। दूसरी ओर सामान्यतया अधिक विहित संगीत-रचना से यह अपेक्षा की जा सकती है कि केवल इतना ही नहीं कि उसका सूचना-तत्व अव्यवस्था और पूर्ण व्यवस्था के दो विपरीत ध्रुवों के बीच में निहित होगा वरन यह भी कि उसमें एक निश्चित कालावधि के भीतर सूचना-तत्व में विविधता का दर्शन होगा। संगीत रचना की सम्भावनाओं में केवल अचयनकारी संगीत के अपवादात्मक मामलों में ही ऐसा होता है कि सूचना-तत्व आदि से अन्त तक एक-जैसा बना रहे।

इलिनॉय विश्वविद्यालय की प्रायोगिक संगीत प्रायोगशाला में एक दिलचस्प विश्लेषण हुआ था। उसके आधार पर मैं यह बताने की कोशिश करूंगा कि सूचना-तत्व किस प्रकार नित्य परिवर्तनशील है तथा सूचना और किस प्रकार पुनरावर्तन का एक द्वन्द्वात्मक प्रभाव रचनाओं और उनके रचयिताओं की शैली को परिभाषित करता है।

विश्लेषण में भिन्न शैली-कालों के चार भिन्न संगीत रचनाकारों के चार गीत लिये गये हैं। इनमें मोत्सार्त का 'सी-मेजर-सोनाटा, के० वी० 545, बीथोवन का 'सी' माइनर में सोनाटा ओप० 90, हिंडेमिथ का सोनाटा संख्या 2 तथा अलबान बर्ग का सोनाटा ओप० 1 को चुना गया था। परीक्षण के दौरान इन चार रचनाओं के प्रथम चरण से चुने हुए अंशों में समस्त स्वर-मान दो प्रकार से परस्पर सम्बद्ध नजर आये : पहले तो सब उदाहरणों में स्वर 'सी' तथा 'सी द्रुत' आदि का स्वर-निर्देशन स्वरावधि से निरपेक्ष रहकर अष्टकों की समानता की स्थिति में किया गया था। दूसरे, जिस काल में स्वर-मान उभरता है उसकी आपेक्षिक अवधि शामिल करने के लिए प्रत्येक संगणित स्वर-मान की अवधि का परीक्षण किया गया। इस प्रकार आवृत्ति की संगणना के लिए एकत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामग्री का निश्चित पता संरचना-मूलक नमूने के अधार पर किया गया जिसमें यह मान लिया गया है कि संप्रेषण में पूर्व चयन की समस्त संभावनाएं स्वतंत्र होती हैं। तीसरे, इन दोनों प्रक्रियाओं में प्रत्येक स्वरमान की संभावना का परिकलन रचना के प्रत्येक अंश अर्थात् प्रथम-सूत्र, संक्रमण, द्वितीय-सूत्र आदि के लिए किया गया। चौथे, इन संभावनाओं के आधार पर प्रत्येक एकल अंश के सूचना तत्व और पुनरावृत्ति तथा चारों रचनाओं के औसत सूचना तत्व और पुनरावृति का परिकलन किया गया। प्रथम परिकलन के लिए सूचना-तत्व की मात्रा का ज्ञान निम्न रेखाचित्र के आधार पर कालावधि के संदर्भ में किया गया है :

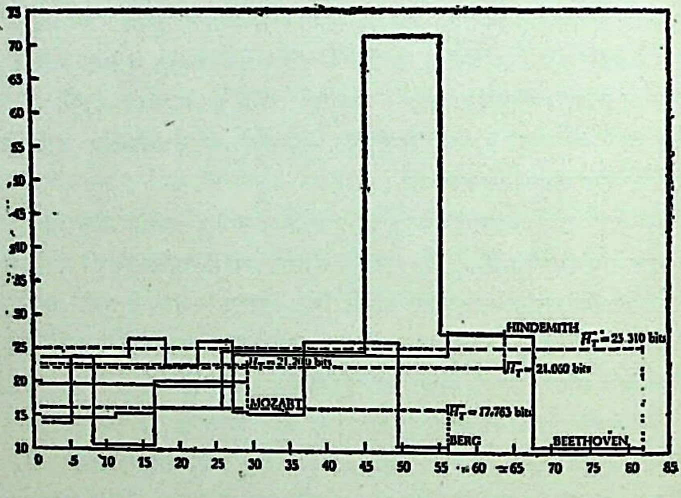

प्रत्येक पूर्ण रचना के औसत सूचना-तत्व से यह वात जाहिर होती है कि मोत्सार्त के संगीत में अधिकतम पुनरावृत्ति है, तथा वह प्रतीकों में कम से कम औसत सूचनातत्व भरता है। इस विश्लेषण के अनुसार वर्ग के संगीत में अचयनशील संगीत के अधिकांश तत्व हैं। अतः ऐसा माना जा सकता है कि उसमें एक-एक करके आने वाले स्वरमानों की गणना एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र होती है।

विश्लेषण के परिणाम इस तथ्य से मेल खाते हैं कि मोत्सार्त का संगीत द्विस्वरीय लय की दिशा में बहुत अधिक झुका हुआ है जबकि वर्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का संगीत सतत सरगम के 12 स्वरों की वर्णीय मूर्च्छनाओं सहित अपेक्षाकृत बहुत अधिक संख्या में समान सभावनाओं को जन्म देता है।

यदि गीत-रचनाओं के अंशों पर विचार किया जाय तो चारों रचनाओं में सूचना-तत्व की दृष्टि से अस्थिरता का बोध होता है। वीथोवन के गीत में एक चरण से दूसरे चरण तक का परिवर्तन बहुत सशक्त और सबसे अधिक कठोर है। इसके विपरीत वर्ग के संगीत में यह सबसे कम है। कुल मिलाकर ऐसा प्रतीत होता है कि यहां तक ये परिणाम श्रोता के व्यक्तिगत अनुभव के समान ही हैं।

इस प्रकार सुनिश्चित की गयी कुल सामग्री का उपभोग सूचना को प्रति सैकिंड बिट्स (पिंडों) के हिसाब से गति के परिकलन में किया गया। यह एक ऐसा परिमाप है जो स्वर की सघनता और गति तथा लय को मापता है।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सिद्धांतों तथा सूचना पर आधारित पाठ-सिद्धांत तथा संगीत का सौंदर्यशास्त्र संगीत-संदेश की योजना को ऐसे सूचना-परक मूल्यों के अनुक्रम में प्रस्तुत करता है। इनको दो प्रमुख श्रेणियों में बांटा जा सकता है। यह वर्गीकरण इस बात पर निर्भर करता है कि सन्देश के बारे में क्या रुख अपनाता है। सूचनापरक मूल्य तथा पुनरावृत्ति के तदनुरूप मूल्य सैद्धांतिक दृष्टि से उतनी ही संख्या में है जितने कि निर्णय के क्षेत्र में। इसमें आवृत्ति संलय, वर्ण, यंत्रीकरण, लय, समध्वनि, सुरीलेपन आदि पर विचार होता है। अथवा श्रोता सूचना के विभिन्न मूल्यों को कितनी देर तक ध्यान-पूर्वक सुन सकता है यह कोष के तत्व पर निर्भर होता है जिसका विस्तार व्यक्ति के मानसिक चरित्र के अनुसार होता रहता है। ये ही व्यक्ति के संगीत-सम्बन्धी ज्ञान के कार्य होते हैं। हालांकि उनको निरपेक्ष और सांख्यिकीय रीति से परिभाषित किया जा सकता है।

सूचना और पुनरावृत्ति को जिन दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। वे पर्यवेक्षण के दो बुनियादी नमूनों के समरूपी होते हैं। १—पहला, पर्यवेक्षण का युक्तियुक्त नमूना। इसमें वह सब सम्मिलित है जो कि मूल्यों के क्षेत्र में अवस्थित है तथा जिसको निरपेक्ष भाव से परिभाषित किया जा सकता है, जो युक्तियुक्त है तथा जिसको एक सार्वभौम भाषा में अभिव्यक्त किया जा सकता है। संगीत-संबंधी प्रतीकों के जगत में यह नमूना स्वरों का समरूपी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२—दूसरा, दृष्टि का अति-युक्तियुक्त नमूना जो उस मर्यादा को लांघ जाता है जिसका निर्माण संगीतमय सन्देश युक्तियुक्त पक्ष और तर्कबद्ध अभिव्यंजना अर्थात् अपनी स्वरलिपि के संदर्भ में करता है। आमतौर पर यह मत स्वीकृत है कि स्वरलिपि क्रियान्वयन की एक योजना, एक तर्कबद्ध अमूर्तन तथा एक ऐसी संगीतमय वास्तविकता के सृजन का प्रतिनिधित्व करती है जो उसका अतिक्रमण कर जाती है तथा स्वयं कुछ नियमों और व्यवस्थाओं के अधीन होती है। हालांकि इनका संकेत केवल एक व्यक्ति से है और वह किसी भी प्रकार सामान्य तौर पर विहित नहीं हैं। वे स्वतन्त्रता की उस मात्रा में अभिव्यंजित होते हैं जो स्वरलिपि द्वारा प्रदान की जाती है और अनुभूति के युक्तियुक्त नमूने के दायरे में घटी हुई सूचना के विपरीत बहुधा बहुत अधिक मौलिकता (अर्थात् निर्बल पुनरावृत्ति) संप्रेषित करते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि सूचनापरक मूल्यों की दोनों श्रेणियां एक बौद्धिक और युक्तियुक्त तथा एक ऐन्द्रिक और इंद्रिय-जन्य अनुभूति-परक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मौलिकता अथवा सूचना के प्रति श्रोता की अनुभूति की क्षमता पर ही संगीत-संदेश की बोधगम्यता आधारित होती है तथा वह ही ऐसे संगीत की रचना के नियमों का निर्धारण करती है जो पूरी तरह समझ में आ सके।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रत्येक आधुनिक सौंदर्यशास्त्रीय रचना को दो कसौटियों पर खरा उतरना चाहिए। ये कसौटियां सामान्य सांख्यिकीय और सूचनात्मक सौंदर्यशास्त्र में बुनियादी मानी जा सकती, हैं: पहली तो यह है कि तथाकथित सृजनात्मक प्रक्रिया अनुभूति रचना, नवीनता, मौलिकता आदि के अर्थ में केवल तभी समझ में आ सकती है जब कि उसका अध्ययन एक सौंदर्यशास्त्रीय-वर्ग के रूप में किया जाये। दूसरे, यह सौंदर्यशास्त्रीय वर्ग केवल सांख्यिकीय रूप में ही प्रभावशाली होता है तथा उसकी परिभाषा उसी रूप में दी जा सकती है। कोई भी संगीत-पाठ केवल उस सीमा तक संगीतमय कृति माना जा सकता है जहां तक कि वह सौंदर्यबोध की सिद्धि और उसका सप्रेषण करे। कृति सौंदर्यबोध की सिद्धि और उसका संप्रेषण तभी कर सकती है जब वह एक ऐसी व्यवस्था-मात्रा पर आधारित हो जिसकी सांख्यिकीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिभाषा दी जा सके तथा चयनकारी जटिलता अथवा प्रयोग में आने ले तत्ववों की आवृत्ति के अनुसार उनके वितरण पर निर्मित हो। भले ही पाठ में न्यूनतम सौंदर्यबोध हो, वह अपने अर्थविषयक और प्रयोजन-परक आयामों के बावजूद किस समय तक सौंदर्यपूर्वक कार्य कर सकता है, यह तुलनात्मक विश्लेषण और व्याख्या का प्रश्न है जो सांख्यिकीय मूल्यों के क्षेत्र में पारंपरिक मूल्यों का भी ध्यान रखता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नैवेद्य संगीत

जे० एस० बाख की संगीत-रचना

मेरी इस वार्ता का विषय बाख की सर्वप्रमुख वाद्य-संगीत रचना 'नैवेद्य-संगीतिका' है। इस रचना को कभी-कभी ही प्रस्तुत किया जा सका है, हालांकि इसकी मूल प्रेरणा जितनी आदिम है उतनी ही अधुनातन।

इस महान कृति की संरचना उस समय हुई थी जब बाख ने ध्वनि-परक उपलब्धियों की चिंता छोड़ दी थी। वृद्ध बाख को कला का दर्शन केवल सूक्ष्म और अमूर्त भावों में होने लगा था और उसकी यह धारणा बन चुकी थी कि कला विशुद्धतः आध्यात्मदर्शन है।

१७४० के बाद बाख ने जितनी भी कृतियां तैयार कीं, उनमें ऐंद्रिक-संवेदना का तत्व नहीं है। ये कृतियां भाव-उन्नयन के चरम शिखर पर स्थापित हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि उनमें सामूहिक चेतना की लूथर-वादी धारणा के बौद्धिक वातावरण से प्रतिबद्ध और तीव्र भावावेश की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिव्यक्ति प्राय: पूर्ण रूप से लुप्त हो गई है। उसका स्थान मानव-जीवन को परिचालित करने वाले मानवीय और सार्वभौम धर्म ने, ले लिया है।

पाश्चात्य-संगीत का इतिहास दो महान कालों में बांटा जा सकता है। इनमें से दूसरा काल पुनर्जागरण से शुरू होता है। पारंपरिक और स्वच्छंदतावादी (रोमांटिक) पद्धति के विकास के समय यह काल अपने चरम उत्कर्ष पर था। इस काल में संगीत का प्रयोजन मानवता और करुणा था।

उससे पहले के काल में मुख्यत: मध्ययुगीन लैटिन और गॉथिक शैलियों का समावेश होता है। यह काल बैराक्-युग में जाकर समाप्त हो जाता है। उस काल में संगीत अतिमानव और सार्वभौम-धर्म का प्रतीक बन गया था।

बाख इन दोनों त्रुटियों के संधिकाल के कलाकार हैं। उसकी कृतियां इन दोनों के भव्य अन्तर्द्वंद्व की सशक्त अभिव्यक्ति करती हैं।

उस युग के चिंतन और भावना में ऐन्द्रिक और भावावेशपूर्ण प्रवृत्ति ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, त्यों-त्यों वे मानवी व्यक्तितत्र से अधिकाधिक संपृक्त होते गये और बाख उतना ही समकालीन अनुभूतियों से कटकर अतीत में पैठते चले गये। वह कला को ईश्वर की उपासना का साधन मानने लगे। उन्होंने अपनी कृतियों में परिमाप और अनुपात की कल्पना तथा बृहमांड का नियमन करने वाले सूत्रों की अभिव्यक्ति करने का लक्ष्य सामने रखा।

'नैवेद्य संगीत' का मूल तत्व यही है। इस कृति में बाख ने प्राचीन गॉथिक आदर्श—चतुष्ट्य शास्त्र—गणित, रेखागणित, ज्योतिष, संगीत (quadrivium) अर्थात् मध्ययुग की मूल भावना को पुनर्जीवित करने की चेष्टा की है। इसमें संगीत केवल एक गीतिकामय और ऐंद्रिक-कला का अभ्यास बनकर नहीं रह गया है, वह कान और आंख की पहुंच से परे, ज्ञान तथा प्रतीति की उपलब्धि और नियमों और संबंधों की खोज का विज्ञान और शास्त्र बन गया है। वह संपूर्ण समरसता का साक्षात् रूप है।

चमत्कार-सा ही लगता है कि 'नैवेद्य-संगीतिका' की बौद्धिक संघटना इतने सशक्त आवेश से ओतप्रोत है कि उसके प्रवाह में संगीत की कठोर तर्कबद्ध संरचना की ओर ध्यान ही नहीं जाता। इसका कारण यह है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि इस कृति का ध्वनिपक्ष असाधारण रूप से वहुरंगी है।

वाख ने कृति के कुछ अंशों के संदर्भ में ही यह संकेत भी दे दिया है कि प्रस्तुतीकरण के लिए किन-किन वाद्ययंत्रों की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ संक्षिप्त सूत्र-संगीतिका(Kanonischen Fuge)के संदर्भ में वह वांसुरी और पियानो का उल्लेख करते हैं और त्रिगायक-वृन्द-संगीत (Trio Sonate) में भी वाद्यों का उल्लेख है। शेष कृति में वाद्य-यंत्रों का चयन प्रस्तोता पर छोड़ दिया गया है। इससे प्रकट होता है कि वाख ने अपने जीवन के इस संध्याकाल में ध्वनि-प्रभाव की अपेक्षा आध्यात्मिक-वौद्धिक तत्व को अधिक महत्व दिया।

'नैवेद्य-संगीतिका' की रचना प्रशा के सम्राट---फ्रेडरिक महान के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में १७४७ में उस समय हुई थी तव वाख पोत्सडाम में सम्राट से भेंट करके लाइप्त्सिश लौटे थे।

पोत्सडाम की वह भेंट दो विरोधी धाराओं के संगम की प्रतीक है। एक ओर तर्क बुद्धिवाद और आधुनिक व्यक्तिवाद के जागरण की धारा थी जिसका प्रतिनिधि सम्राट था तो दूसरी ओर मध्ययुगीन चिंतन की एक क्षीण-सी धारा थी जिसका प्रतिनिधि वाख था।

महान संगीतकार ने उस ऐतिहासिक घड़ी को अपनी शानदार 'नैवेद्य संगीतिका' में अमर कर दिया है।

वाख जव सम्राट से भेंट करने के लिए पोत्सडाम गये तो फ्रेडरिक महान ने उसे एक सूत्र दिया और कहा कि इसके आधार पर एक संगीतिका की रचना करो। वाख ने स्वयं कहा है कि लाइप्त्सिश की वापसी पर मैंने संकल्प किया कि इस शाही सूत्र को विशुद्ध रूप से विस्तार देकर समूचे विश्व तक पहुंचाऊंगा। इसके वाद उन्होंने इस प्रभावशाली संगीतिका की रचना की। इसमें तेरह वैविध्य से परिपूर्ण खण्ड हैं। शाही सूत्र निरन्तर रचना के मूल में रहता है। वही इस अनन्त सम्भावना-युक्त संयुक्त-कलात्मक कृति का प्रारम्भिक विन्दु भी है।

वाख ने अपनी कृति सम्राट को समर्पित की है तथा मुखपृष्ठ पर लिखा है—'Regis Jussu Cantio Etreliquia-Canonico का अर्थ सम्राट द्वारा दिये गए सूत्र को केनन(canon) किया गया। इस प्रकार इस कृति के पीछे वह वैविध्य है जो दस भिन्न प्रकार के विरोधी आन्दोलनों का विषय रहा है। केनन का अर्थ किसी लय की दूसरे स्वर में ज्यों की त्यों पुनरावृत्ति है। इसके अतिरिक्त वाख के समर्पण का एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और महत्व भी है: यह एक पहेली भी है क्योंकि समर्पण के शब्दों के पहले अक्षरों में मिलाकर लैटिन का शब्द रिसेरकेयर (ricercare) वनता है। इस शब्द का अर्थ है—खोज या आशा। यहां संगीतकार मूलसूत्र की खोज कर रहा है जो वार-वार सामने आ जाता है। वाख ने दो संगीतिकाओं के नाम भी ricercare दिये हैं। यह संगीतिका के उस प्राचीन स्वरूप का नाम था जिसमें पहली वार का अनुकरण करते हुए मूल सूत्र वार-वार दोहराया जाता है। दो संगीतिकाओं को यह नाम देने के पीछे वाख का प्रयोजन उस प्राचीन संगीत-शैली के सम्माननीय स्वरूप पर वल देना ही रहा होगा। इस प्रकार उसने शाही सूत्र को दो प्राचीन विधियों --केनन (canon)और संक्षिप्त-सूत्र-संगीतिका(fuge) के आधार पर विकसित किया। परन्तु इसके साथ ही वाख ने संगीतिका को युग की प्रतिनिधि संगीत-शैली के रूप में भी प्रस्तुत कर दिया। वह वैराकोत्तर काल के श्रेष्ठ संगीत की प्रतीक वन गई तथा उसमें चार पारम्परिक विधियों—लेंटो—अलेग्रो—लेंटो—अलेग्रो (lento—allegro—lento —allegro) का समावेश किया गया। यह वाख की कृति का सवसे वड़ा अंश है। इस प्रकार वाख ने सम्राट द्वारा दिये गए सूत्र को अतीत की ही नहीं वर्तमान की विधियों से भी संयुक्त करके एक नया स्वरूप प्रदान किया।

कृति के इन सब अंशों में मौलिक दर्शन, मूलरूप में, मूल्यों में कमी के साथ, सम्पन्न अथवा खण्डों में विभाजित रूप में होता है।

यह बहुरंगी चरित्र जितना शास्त्रीय है उतना ही वैराकपंथी भी। वैराक शैली में सूत्र हमेशा अपने मूल-स्वरूप में ही उपस्थित रहता है। शास्त्रीय शैली में सूत्र पूरी तरह परिवर्तित हो जाता है, उसके विशिष्ट लक्षणों को नयी और भिन्न संगीतमय वन्दिशों में पुनर्गठित कर लिया जाता है। परन्तु इन स्थायी विविधताओं में सवसे अधिक चमत्कारपूर्ण विविधता सूत्र के मूलस्वरूप का रूपांतर है :

वह सशक्त और भावनात्मक रूप में,
अथवा व्यथापूर्ण और उदास,
अथवा वैराक की शैली के आधार पर,
अथवा तालवद्ध और अन्तरंग,
अथवा गरिमा और उदारता सहित प्रकट होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्यपि इस कृति में विविधता उत्पन्न करने की विधि महत्वपूर्ण है, तथापि सूत्र भी अपने आप में महत्वपूर्ण है। वह एक अनुपम महानता से सम्पन्न संगीतमय कृति है—अन्तरंग और साथ-साथ भावनात्मक तथा गरिमामय। वह स्वर-संघात और मात्रा, साथ ही स्वर प्रधान, वार्णिक तानमय, तानरहित तथा इतर-विविधताओं का सम्पन्न स्रोत है।

सूत्र की इस अभिव्यक्तिपरक सम्पन्नता को ध्यान में रखने पर हमारी समझ में यह बात आसानी से आ जायेगी कि वाख उसके संगीतात्मक स्वरूप की ओर आकर्षित हुए। उन्होंने उसकी विविधता सम्बन्धी सम्भावनाओं की प्रत्येक दिशा को खोजा। विविधता की यह प्रतिभापूर्ण विधि, कृति की प्रस्तावना में शब्दों के साथ किये गए खिलवाड़ की महत्ता को भी स्पष्ट कर देती है। समर्पण में सन्निहित शब्द-(ricercare) से यह संकेत मिलता है कि श्रोता को मूलसूत्र विभिन्न स्वरूपों और विविधतापूर्ण अंशों में इस प्रकार मिलेगा कि कृति का विविधतामय चरित्र प्रकाश में आ सके।

कठोर ढांचे और शास्त्रीय वन्दिशों के वावजूद केननों की स्वाभाविक और द्रुत ध्वनियां चमत्कारपूर्ण हैं। केनन दो प्रकार की हैं—क्रेब्ज और श्पीगल (krebs and spiegel kanons) क्रेब्ज केनन ध्वनियों को पीछे की ओर ले जाती हैं तथा श्पीगल केनन आरोहावरोह की स्थिति में। प्रत्यावर्ती वंदिश सूत्र को प्रतिलोम में प्रस्तुत करती है—अंत से आदि की ओर। आरोहावरोह बंदिश में तीसरा आरोह-स्वर अवरोह बन जाता है और यही क्रम चलता है। प्रत्यावर्ती केनन तो वायलिनों के लिए है और आरोहावरोह चौथा (कांट्रेरियम) प्रतिकूल गति में। इसके अतिरिक्त वाख अंतिम केनन में लैटिन शब्द (Quaerendo invenietis) जोड़ देते हैं--इसका अर्थ यह है कि 'जो खोजेगा सो पायेगा' और इसका संकेत दूसरी आवाज़ के प्रवेश की ओर है जिसका उल्लेख रचनाकार ने नहीं किया है।

इस कृति में दो केनन विशेषतौर पर दिलचस्प हैं क्योंकि इनमें कृतिकार ने सम्राट को वधाई दी है। इनमें से पहले का शीर्षक है—(No Tulis crescentibus crescat, Fortuna Regis) यह प्रतिलोमगति में आरोहावरोह केनन मात्र नहीं है। इस केनन में केवल मूल्यों को ही दोगुना नहीं कर दिया गया है, सूत्र के उत्तर अर्थात् दूसरी आवाज में सूत्र के अनुकरण में भी अभिवृद्धि हुई है। इन दोगुने मूल्यों के द्वारा वाख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्राट के प्रति विशिष्ट सम्मान व्यक्य करना चाहते थे। वह लिखते हैं, 'सम्राट की समृद्धि में वैसे ही अभिवृद्धि हो, जैसे स्वरों में हो रही है।' अपनी अभिव्यक्ति में यह केनन राजकीय समारोहों का प्रतीक है। पहली लय और सोलहवीं लय की क्रमिक गति केनन को उस फ्रांसीसी कृति जैसा बना देती है जो सम्राट के शाही वक्स में प्रवेश करते ही ऑपेरा में प्रस्तुत की जाती थी। यह उत्सव धुन बरोक की शाही कृतियों की उत्कृष्ट शैली को प्रतिबिम्बित करती है।

दूसरे खण्ड का अंतिम केनन—'पर-टोनोस' (Per tonos) सीधे सम्राट से संबंधित है। सूत्र और उसका प्रत्युत्तर मूल धुनपर समाप्त नहीं होते, वरन वे हमेशा उच्चतर की ओर बढ़ जाते हैं। अन्त तक पहुंचने के लिए इस केनन को छः बार प्रस्तुत करना होता है। यह 'पर-टोनोस' (Per Tonos) वृत्ताकार गति से आरम्भ की ओर लौटता है। इसका अर्थ है: समूचि गति ध्वनियों (Tones) के टोन्स द्वारा उत्पन्न करना। बाख ने इसकी व्याख्या इन शब्दों में की है—'सम्राट की गरिमा वैसे ही उन्नत होती जाये जैसे कि ध्वनि का आरोह होता है।'

दिलचस्प बात है कि यही दो केनन जो सम्राट की गरिमा और समृद्धि की प्रतीक हैं, अपनी अभिव्यक्ति में सबसे अधिक सबल और अमूर्त बन पड़े हैं। हालांकि इनकी रचना काफी शास्त्रीय पद्धति से की गई है फिर भी ये सभी केनन स्वच्छन्द रूप से निर्मित मालूम पड़ते हैं। रचनात्मक भाव और ध्वनि का संयोग एक उच्चतर स्तर पर हुआ है।

पाश्चात्य संगीत के इतिहास में 'नैवेद्य संगीतिका' तथा 'संक्षिप्त सूत्र संगीतिका' विशाल पर्वतों की एकान्त चोटियों जैसी दिखती हैं। ये दोनों बाख की अन्तिम कृतियां हैं। निस्संदेह ये महान जर्मन संगीतकार की सबसे अधिक समुन्नत वाद्य-संगीत रचनाएं हैं।

नैवेद्य संगीत सुनने की दृष्टि से भी एक कठिन कृति है। इसका कारण यह है कि उसमें हमेशा नये तत्व उभरते हैं। यह एक जटिल प्रतिबिंदुवत् संरचना है। इस कृति में युक्तियुक्त तर्कबद्धता तथा विपुल अभिव्यंजना परक मूल्य निहित हैं, जिनके कारण इसकी शानदार संरचना उस व्यवस्था के दैवी-सिद्धान्त का प्रतिबिंब प्रतीत होती है जो मध्य-कालीन भावना और चिन्तन के अनुसार विराट् और सूक्ष्म ब्रह्मांड पर शासन और एक सीमा तक बाख के सौन्दर्यशास्त्र का निर्धारण करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शूबेर्ट की अपूर्ण सिंफनी (समस्वर-संगीतिका)

(Schubetr's unfinished symphony)

स्वच्छंदतावादी संगीत की सर्वाधिक सुंदर कृतियों में से एक का जन्म और इतिहास, अभी तक अंधकार में खोया हुआ है। यह कृति है शूबेर्ट की अपूर्ण (समस्वर-संगीतिका सिंफनी-बी, माइनर में)। इसकी रचना १८२२ में हुई थी। यह पाश्चात्य संगीत की उन कृतियों में है जिसमें समस्वर वाद्य-संगीत का एक नया आयाम और वस्तुतः समूचा संगीत ही मूर्त हो उठा है। यह नया आयाम आमतौर पर स्वच्छंदतावादी या रोमांटिक कहलाता है। रोमांटिक एक ऐसा शब्द है, जिसकी निश्चित परिभाषा अभी तक नहीं हो सकी है। उपलब्ध सभी परिभाषाएँ इतनी व्यक्तिगत हैं कि मौलिक विषयवस्तु का वर्णन कठिन हो जाता है। एक अत्यंत विशिष्ट संदर्भ में ए. थ. अ. हाफमन (E. Th. A.-Hoffmann) ने बिथॉवन के वाद्य-संगीत को वास्तविक स्वच्छंदतावादी संगीत कहा है। लेकिन शूबर्ट की बी-माइनर में सिंफनी (समस्वर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतिक) के लिए रोमांटिक शब्द के लिए न तो यह परिभाषा सही-बैठती है, न बाद की पारम्परिक रूप में स्वीकृत परिभाषा। इसमें मंद्र (बॉस) का प्रारंभिक संयोग एक जादुई शक्ति के स्पर्श से ऐसा लगता है कि वही इस सिफनी का शीर्षक और प्रयोजन है। शूबेर्ट की इस संगीत कृति में से पहली बार वह सम्मोहनकारी चमत्कार निष्पंदित होता है जो उसकी बाद की कृतियों—अष्टवाद्यगान (Octett), 'बी' फ्लैट मेजर और 'ई' फ्लैट मेजर दोनों पियानो-त्रिको (Piano-trios),'जी' मेजर चतुष्राग (Quartet) 'सी' मेजर में तार पंचसंयुक्त (String-Quintct) 'सी' मेजर सिफनी और तीन पियानो सोनाटाज (Piano Sonatas)—'सी' माइनर, 'ए, मेजर और 'बी' फ्लैट का प्रमुख लक्षण बन गया है! उनकी निश्चित ध्वनि, उनका सुरीलापन, संगीत सम्बन्धी विचारों का निस्सीम भंडार, नयी समध्वनिमूलक भाषा का नयापन और ताजगी, असामान्य संदेश की प्रेषणीयता और प्रतीयमान निराकार आयाम भी उस मंजुलता और उलास को उन्मुक्त बिखेर देते हैं जो तब से आज तक शूबेर्ट के संगीत में सम्मोहन का कारण रहे हैं।

शूबेर्ट की इस अपूर्ण सिफनी की तुलना वियना के शास्त्रीय संगीतकारों—हेड्न (Haydn), मोत्सार्त (Mozart) और बिथॉवन (Beethoven) से नहीं की जा सकती। सिफन के क्षेत्र ने यह शूबेर्ट की उपलब्धियों का एक नया विहान खोल देती है। पियानो के लिए उसकी "एक सैलानी की स्वप्न कथा (A Wanderer's Phamtasy) के साथ मिलकर उसकी महान वाद्यसंगीत रचनाओं को उद्घाटित करती है।

शूबेर्ट ने अपनी दोनों प्रथम सिफनियों की रचना कैथॉलिक बोर्डिंग स्कूल में पढ़ते समय स्कूल के वाद्यवृन्द के लिए की थीं। अपूर्ण सिफनी के लिए इतने बड़े वाद्यवृन्द की आवश्यकता है और उसका क्षेत्र इतना असाधारण रूप से विस्तृत है कि संदेह होने लगता है कि इसकी रचना उसने तीसरे, पाँचवे और छठे नम्बर की सिफनियों की तरह वियना की किसी-निजी वृन्दवाद्य संस्था (society) के लिए की होगी। उस जमाने में वियना में इस तरह की अनेक संस्थाएँ थीं। उस समय तक जरमन-गीतों के रचनाकार के रूप में शूबेर्ट की ख्याति स्थापित होती जा रही थी। वे अपनी रचनाएँ संगीत-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराते थे और उनको जनता के सामने प्रस्तुत किया जाता था। जिस समय 'बी' माइनर सिफनी की रचना हुई उसी साल उसने "अल्फॉंजी एन्ड एस्ट्रैला',

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(Alfonso and estrella), "वांडरर्ज फैंटसी" और "ग्रेट मास इन ए फ्लैट मेजर" (Great mass in a flat mazor)— सितम्वर, १८२२— नामक गीत नाटक पूरे किये थे ।

शूबेर्ट की सुन्दरतम कृति "अपूर्ण" की पांडुलिपि पर यह शीर्षक है—"बी माइनर में सिंफनी" रचनाकार फ्रान्त्स शूबेर्ट mpia (अर्थात manupropria) —वियना, ३० अक्टूबर १८२२ । शूबेर्ट की शैली के आधार पर कहा जा सकता है कि यह तिथि रचना सृजन के आरम्भ की द्योतक है । पांडुलिपि में वहुत मामूली-से संशोधन हैं ओर उसमें दो पूर्ण गतियों के अतिरिक्त शेरजो [scherzo] के नौ पूर्ण वृन्दवाद्यात्मक विरामों का भी समावेश है । पांडुलिपि यहीं अचानक समाप्त हो जाती है।

'बी' माइनर सिंफनी के वारे में वार-वार एक ही प्रश्न उठता है; क्या शूवर्ट ने इस कृति को जान-बूझकर अपूर्ण छोड़ दिया था ? या वह किसी दुर्घटनावश अपूर्ण रह गयी थी ।

शूबेर्ट ने कई रचनाएँ अधूरी छोडी हैं, विशेषतः वाद्य-संगीत के क्षेत्र में। उनमें से नाना-गति वाली रचनाओं की कुछ गतियाँ गायव हैं । और कुछ में विशिष्ट गतियों के अंश मात्र वचे हैं । इन अपूर्ण रचनाओं में से कुछ ऐसी भी हैं जो संपूर्णतः एक रेखाचित्र के स्तर तक ही पहुँच पायी है जैसे 'ई' मेजर और 'डी' मेजर सिंफनियां । शूबेर्ट की शैली इसका एक सहज कारण प्रस्तुत करती है; शूबेर्ट ने सम्पूर्ण कृति की जो कल्पना की थी जव वह रचना में साकार नहीं हो सकी तो उसने उसे अधूरा ही छोड़ दिया । ऐसा लगता है कि शूबेर्ट को अधिक संशोधन और काट-छाँट करना पसंद नहीं था !

जहाँ तक उस अपूर्ण सिंफनी का प्रश्न है, वहाँ यह तर्क लागू नहीं होता । इस कृति को हमेशा एक सर्वांगपूर्ण इकाई माना जाता है और यहा कहा जाता है कि यह उसकी अनेक वाद्य-संगीत रचनाओं में यह सव से अधिक सुसुवद्ध है । यह गलत नहीं है दो पूर्ण-गतियों के वाद, वाद की रचना समान रूप से श्रेष्ठ है इस वात की अपेक्षा नहीं की जा सकती । शूबेर्ट ने इस कृति को अपूर्ण छोड़ते समय संभवतया ऐसा ही महसूस किया होगा । वहरहाल जो भी हो, उसने अपने मित्र को जो पत्र इस वारे में लिखा था उससे यह जाहिर नहीं होता कि शूबेर्ट 'बी' माइनर सिंफनी को परंपरागत रूप में एक सिंफनी मानता है । १८२४ में उसने लिखा था गाथागोत (Liedea) में नया वहुत कम होता है । लेकिन मैंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी अनेक वाद्य-संगीत-रचनाओं में नवीनता भरी है। मैंने वॉयलिन, बड़ा वॉयलिन (Violo) और मन्द वॉयलिन (Violoncello) के लिए दो चतुष्रागों (quartets) और अष्टक की रचना की है। एक और चतुष्राग भी तैयार करना चाहता हूँ। मैं इनके माध्यम से बड़ी सिंफनियों की रचना करना चाहता हूँ। यह लक्ष्य उसने असंदिग्ध रूप में १८२८ की ग्रेट 'सी' मेजर सिंफनी की रचना करके प्राप्त तो किया ही। संभवतः १८२५ की ग्म्युनडन गश्टाईनेर सिंफनी की रचना में भी कुछ हद तक सफलता पायी। अब यह रचना अप्राप्य है।

१९ वीं शताब्दी में परवर्ती रचनाकारों की (समस्वरमूलक) कृतियों के लिए विथोवन की कृतियों ने आदर्श प्रस्तुत किया। ये रचनाकार आमतौर पर स्वच्छंदतावादी कहलाते हैं। शूबेर्ट की 'बी' माइनर और 'सी' मेजर सिंफनियों की तरह विथोवन की कृतियां एक कोने में नहीं पड़ी रहीं; उनको निरंतर प्रस्तुत किया जाता रहा। बेरलिओत्स की "फैंटास्टिक-सिंफनी" १८३० और मेन्डलजोन, श्फोर, शूमन और लिज़्तस्त और (Mend elssohn, Spohr, Schumann, Liszt) की सिंफनियों और सिंफनी-गीतिकाओं और वाग्नर की 'ट्रीस्टान', १८५९ की रचना शूबेर्ट की 'बी' माइनर सिंफनी के जन्म से पहले ही हो चुकी थी। शूबेर्ट की कृतियों को परवर्ती संगीत से निश्चित रूप से अलग रखना होगा, क्योंकि उसने रचना को एक इकाई मानकर सुरीलेपन और समध्वनिमूलकता की धारणाओं के माध्यम से समग्रता सिद्धि की चेष्टा की है। यह उसके गीतों और वाद्य-संगीत रचनाओं—दोनों का उद्गम है।

शूबेर्ट ने अपनी परिपक्व वाद्यसंगीत-रचनाओं में वियना के शास्त्रीय रचनाकारों की परम्परा का निर्वाह नहीं किया। वह नितान्त अकेला खड़ा है और वास्तव में उसकी कृतियों की मौलिकता अद्वितीय है। संगीत के क्षेत्र में ऐसी कोई अन्य कृति नहीं है जिसकी धारणा, जिसकी तकनीकी विशदता और जिसकी विषयवस्तु की तुलना शूबेर्ट की 'बी' माइनर सिंफनी के साथ मोटे रूप में भी की जा सके। अतः यह कहा जा सकता है कि यह कृति उन सिद्धान्तों के दायरे से बाहर है जिनका विकास हेडन, मोतसार्त और विथोवन ने समस्वरमूलक वाद्य-संगीत के लिए किया था।

शूबेर्ट की सिर्फ ग्रेट 'सी' मेजर सिंफनी की शैली, परवर्ती स्वच्छंदतावादी वियना-सिंफनी-शैलीसे मेल खाती है। वह भी संगीत-संरचना के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिहाज़ से नहीं, बल्कि सूत्र अर्थात् विषयवस्तु के कुछ लोकप्रिय लक्षणों के लिहाज़ से। शेरत्सी (Scherzi) के सपाट समंध्वनिमूलकता और वाद्यवृन्द संयोजन की दृष्टि से भी शूबेर्ट उनके समान दिखायी देता है। स्वच्छंदतावादी वियना-सिंफनी-शैली के अंतर्गत मुख्यतः ब्राम्ज़ (Brahms) ब्रुकनर (Bruckner) और मालेर (Mahler) की गणना की जा सकती है।

एक बात समझ में नहीं आती : अपूर्ण सिंफनी जैसी शानदार कृति को शूबेर्ट के जीवनकाल में प्रस्तुत तो किया ही नहीं गया ; बाद में भी उसे एकदम पूरी तरह भुला दिया गया। यह मात्र संयोग नहीं है, शायद इसका कोई न कोई कारण रहा है। 'सी' मेजर सिंफनी के शोध के मामले में भी यही हुआ। एक शोध राबेर्ट शूमन ने की। इसे वियना में १८२८ और १८३८ में, प्रस्तुत करने की चेष्टा भी की गयी और दोनों बार विफलता मिलने पर इसे बहुत क्लिष्ट बताकर छोड़ दिया गया था।

'बी' माइनर सिंफनी के बारे में तकनीकी कठिनाइयों की बात समझ में नहीं आती। उस ज़माने के वृन्दवाद्य के लिए इसे प्रस्तुत करना बहुत कठिन नहीं था। केवल यही कारण, सार्थक मालूम होता है कि 'सी' मेजर सिंफनी अपने आप में बहुत विलक्षण थी, और हेड्न, मोत्सार्त और बिथोवन की सिंफनियों की तुलना में वह पूरी तरह विषम स्वरमूलक लगती थी। इसके कारण वृन्द-वाद्यकार उससे एक अलगाव महसूस करता था। यदि 'बी' माइनर सिंफनी को शूबेर्ट के जीवन काल में प्रस्तुत कर दिया गया होता तो उसके बारे मे भी वृन्द-वाद्यकारों की यही प्रतिक्रिया होती।

१९ नवम्बर १८२८ में वियना में शूबेर्ट का देहान्त हुआ। पाश्चात्य संगीत की सबसे प्रभावशाली रचना "अपूर्ण" को पहली बार १८६५ में योहान हेरबक (Johann Herbeck) के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भविष्य का संगीत नाटक : नाट्य संगीतिका : ऑपेरा

अगर हम मानते हैं कि संगीत-नाटक(नाट्य-संगीतिका)का एकमात्र प्रयोजन, अपने समय में प्रचलित धारणा के अनुसार अतीत की त्रासदी को पुर्नजीवित करना था. तो अब यह स्वीकार करना होगा कि यह विलक्षण संगीत-नाटक बहुत जल्दी अपने उद्गम से आगे बढ़ गये। हम आज निश्चित रूप से यह भी नहीं कह सकते कि अतीत की त्रासदियों को अभिनीत किस प्रकार किया जाता था, उसमें काव्य, संगीत, नृत्य, अनुकरण और स्थापत्यकाल का सम्मिश्रण था या नहीं; क्या उनका उद्भव धर्म से हुआ था ? और उनका स्वरूप, तथा मूल-सार्वभौमिक प्रयोजन धार्मिक था या नहीं।

कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि प्रारम्भिक प्रयोजन की दृष्टि से मोत्सार्त के संगीत-नाटक मानव जाति के आध्यात्मिक इतिहास का एक अत्यन्त रोमांचकारी अंग हैं। अगर दांते की डिवाइन कामेडी को महानतम साहित्यिक रचना माना जा सकता है तो 'फ़िगारोज़ का विवाह'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(Figaro's Hochzcit), 'डान गियोवन्नी' और 'जादुई बाँसुरी' को मानवीय कॉमेडी के रूप में प्रतिष्ठित करना होगा। इन कृतियों की रचना भी महज संयोगवश और शुद्धतः सांगीतिक-प्रयोजनों से ही हुई थी। इसीलिए उनकी परिभाषा के संगीत-नाटक के अतिरिक्त और किसी प्रकार नहीं की जा सकती। अपनी सृष्टि के दो सौ साल बाद संगीत-नाटक अपने स्वरूप और अपनी प्रकृति में इतना परिपूर्णतया सम्पन्न हो चुका है कि उसके इस स्वरूप में अब किसी प्रकार का विकास सम्भव नहीं है, व्यावहारिक भी नहीं है। इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता।

आज यह आम धारणा ही है कि १९२५ में आल्वान वर्ग के वोत्सेक (Wozzek) द्वारा ऑपेरा को एक पूर्ण-संगीत-नाटक के रूप में स्थायी रूप दिया जा चुका था। अधिक वारीकी से जाँच करने पर यह भी पता चलता है कि वाग्नेर के ट्रिस्टान (Tristan) को ही प्रामाणिक आरंभ विंदु माना जा सकता है। पश्चिमी श्रोताओं के मन में इस कृति के प्रति झुंझलाहट का तो नहीं लेकिन रोष का भाव ज़रूर पैदा हुआ था। वाग्नेर ने उन रूपों को ही अपनी कृति का आधार वनाया है जिन्हें पारिभाषिक तौर पर अति-आयामी (aber-dimensional) त्रिगति?कण्ठीय समस्वरता (dreisatzige vokalism fonic) वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

वाग्नेर कृत "एक सम्पूर्ण कलाकृति" (Gesamtkunst werk) में संगीत-नाटक के निर्णायक तत्त्व जानबूझकर और अधिकार पूर्वक निकाल दिये गये हैं। महत्वपूर्ण यह है कि वाग्नेर ने विशेषतौर पर रहस्यात्मकता के तत्त्व का समावेश करके (शायद अप्रत्यक्ष रूप से) धार्मिक तत्त्वों पर विजय पाने की कोशिश भी की है। वास्तव में वाग्नेर की कृति का प्रभाव विना किसी बुनियादी गहराई या स्पष्टता के ही संपन्न हो गया। वाग्नेर ने अपनी कृति में जिन देवताओं और वीरों को पात्र वनाया उनकी नियत भी प्राचीन कालीन देवताओं और वीरों जैसी ही थी; उत्पीड़न और संवेगों की उसकी कहानियां और कल्पित पात्र अतिशयोक्ति की दृष्टि से प्राचीन मन-गढ़ंत गाथाओं की उपलब्धियों से कहीं वढ़-चढ़ कर ही हैं। परिणामतः यह कृति बहुत साधारण स्तर की होकर रह गयी। इतना ही नहीं, यह कहना भी गलत नहीं है कि एक सम्पूर्ण कलाकृति शीर्षक की व्याख्यायें चाहे जितनी की जायें, और उसे लेकर जितनी गलतफहमी भी चाहे जितनी बनी रहे; उसमें यह विचार निश्चय ही निहित है जिसने संगीत-नाटक को संगीत के साथ अविच्छिन्न रूप से संबद्ध कर दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम इसे वाग्नेर की सनक ही मानते हैं कि उसने पहले तो अपने को कवि और वाद में महज़ संगीत रचनाकार कम्पोजर माना, फिर अपने निजी नाट्य-गृह, की कल्पना करके उसे साकार रूप दिया। इसे नाट्य-अभिनय को कवि का ही विस्तार भी माना जा सकता है। इस विस्तार की महत्ता को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।'

प्रश्न यह है कि उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर सगीत-नाटक के भविष्य के वारे में क्या निष्कर्ष निकाले जायें या क्या दावे किये जायें। उत्तर इस एक सूत्र में ही निहित है कि "सगीत-नाटक एक परिपूर्ण रंग-मंच है।"

वर्तमान पाश्चात्य रंगमंच की वास्तविक स्थिति देखकर वोध यह होता है कि उसमें तात्कालिक आवश्यकताओं से अधिक उन वातों पर वल दिया जाने लगा है जिनकी अभी केवल चर्चा ही की जानी चाहिए थी; उन्हें भविष्य के भरोसे छोड़ दिया जाना चाहिए था। यदि हम पद्धति की वात करें तो हमें संगीत-नाटक, या उससे भी अधिक रंगमंच का ध्यान रखना होगा। मेरा अभिप्राय यह है कि संगीत-नाटक के लिए जो रंगशाला वनायी जाये, उसे और अधिक प्रभावी वनाने के लिए वहाँ समस्त नाटकीय विधाओं का केन्द्रीयकरण हो। दूसरे शब्दों में, वहुविध संगीत-नाटक को सम्पूर्ण रंगमंच का स्वरूप देने के लिए स्थापत्य, मूर्ति-कला, चित्रकला, संगीत-रगमंच, वाक्‌रंगमंच, नृत्यनाटक, फिल्म, माइ-क्रोफोन टेलेविजन, टेप और टोन तकनीक, विद्युत सगीत, ठोस संगीत, सरकस, चल-रंगमंच के सगीत और अन्य विधाओं का सम्मिश्रण आव-श्यक है।

अव इसके परिणामों पर भी विचार कर लिया जाये।

मुझे ऐसा लगता है कि आज यदि वहुविध सगीत-नाटक की रचना का काम हाथ में लेना हमारी परिस्थितियों के अनुरूप होगा। पिछले कुछ वर्षों में सगीत और रंगमंच दोनों के ही क्षेत्रों में व्यापक शोधकार्य हुआ है। परिणामस्वरूप असाधारण मात्रा में वहुविध साधन सामने आये हैं। ज़रूरत सिर्फ यह है कि रचनाकार की चिंतनशक्ति, नियोजन-भावना और कल्पनाशीलता इन साधनों का प्रयोग करें। सगीत-रंगमंच के उत्थान की दिशा क्या हो, इस प्रश्न का उत्तर असंदिग्ध और स्पष्ट है। विचित्र वात है कि इस वारे में पश्चिमी धारणा एकदम उलटी है। अतः उस दिशा से आने वाली गूंज, महज एक गूंज वन कर ही रह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है। योरुप, अमेरिका में 'नवीनता' के स्नेह-शोर-गुल का परिणाम यह हुआ कि संगीत-नाटक की रक्षा के लिए जिस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता थी, उसकी ही ओर से लोगों का ध्यान हट गया। वह है— हाल में समुत्पन्न नवीन तत्वों के आध्यात्मिक संयोजन का पूर्व एकीकरण। नयी पद्धति के विकास के लिए नये तकनीकी साधनों के निर्माण और उन साधनों के अनुसंधान के लिए शोधकार्य का समान महत्व है। यह कार्य खुदबखुद नहीं होगा। बहुविध संगीत-नाटक के लिए ही समर्पित प्रेक्षा-गृही का निर्माए विशेष रीति से किया जाना चाहिए। इस नगे प्रेक्षागृह का भवन भी अनेक आवश्यकताओं के अनुरूप ही हो। इसका स्वरूप एक प्रकार के उसके जटिल रगमंच-नगर जैसा हो ताकि अनेक प्रकार से उसके उपयोग की सम्भावना रहे। इसकी सम्पूर्ण रचना में एक प्रकार का ऊपर से नीचे की ओर वाला क्रम हो। उसके अपने नियम जो उसके स्वरूप को अन्तर्राष्ट्रीयता दें। सब मिलाकर यह एक ऐसा विश्वविद्यालय हो, जिसमें अनुसंधान के लिए प्रयोगशाला, शिक्षण, फिल्म, टेलीविज़न, विद्यु त-वाद्य आदि सभी के लिए अलग-अलग कक्ष हों। यह नयी रंगमंच मूलतः एक तकनीकी रंगमंच ही हो उसमें ऐसे आधुनिकतम उपकरण होने चाहियें जैसे अन्तरिक्षयान में होते हैं। यह रंगमंच आत्मा का अन्तरिक्षयान होगा। उसका आकार-प्रकार बहुत विराट हो और उसका सम्पूर्ण नक्शा ऐसा हो कि वह आध्यात्मिक सांस्कृतिक स्वतंत्रता के किसी विराट स्मारक का प्रभाव डाल सके। बहुत व्यापक अर्थों में यह रंगमच आधारभूत मिलन-स्थान बनेगा।

इस रंग-स्थल में अनेक बहु-उद्देशीय मंच हों, गोल या घुमावदार हों, ताकि आवश्यकता पड़ने पर एक साथ या एक बार दूसरे का उपयोग किया जा सके। ये मंच दर्शकों के अनुरूप, अचल या अ-स्थिर हों। अभिनय स्थल बदलने के लिए मंच को ऊंचा-नीचा कर सकना और दर्शकों को केवल साक्षी ही नहीं, बल्कि संवाद का साझीदार बना सकना संभव हो। इसमें ऐसी व्यवस्था भी हो कि आवश्कतानुसार एक ही अभिनय प्रस्तुत करने के समय या वैसे भी दूसरे की दृष्टि से ओझल किया जा सके, मंचीय या फिल्मी अभिनय और वाद्यवृन्द को अदलने-बदलने के लिए वाद्य-मंच को ऊपर उठाया जा सके, क्योंकि संगीतनाटक प्रस्तुतीकरण के समय, आवश्यकतानुसार वाद्यमंच भी तकनीकी-रंगमंच का अंग ही होता है। रंगमंच के भीतर दर्शकों के लिए सभी दिशाओं में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखने और सुनने की सुविधा होगी, इसके लिए पहियेदार कुर्सियों की व्यवस्था भी जरूरी है। और चारों ओर घूम सकने वाली कुर्सियों की व्यवस्था भी जरूरी है।

पूरी तरह आवश्यकता के अनुरूप ढल सकने की आवश्यकता ही रंगमंच का स्वरूप निर्धारित करेगी और उसे बदल डालेगी। इसके लिए ऐसे नाटकों के चुनाव की जरूरत होगी जो लगातार खेले जा सकें। भीतरी और बाहरी कमरों के बीच अनेक रूपी सम्बन्ध, रंगमंच की बनावट में भी स्पष्ट हों, और नाटकीय तौर-तरीके की परिवर्तनशील स्थितियों के लिए प्रेरित कर सकें।

देखते ही स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यहाँ कोई नया नाटक खेला जा रहा है या उसकी तैयारी हो रही है। भवन की तकनीकी का कमाल यह हो कि एक कक्ष और दूसरे कक्ष के बीच विस्तार का संकोच आसानी से किया जा सके। जहां तक स्वयं अभिनेताओं का सम्बन्ध है: उनके प्रशिक्षण के लिए एक शिक्षण-केन्द्र खोलना होगा, जिसमें संगीत-नाटकों के विविध दायित्वों के निर्वाह के लिए विशेष प्रकार के अभिनय द्वारा आवश्यक विषयों की तैयारी का सारा साज-समान हो। अगर यह मानकर चलें कि आज की जरूरतें कभी भविष्य में ही पूरी होंगी तब तो यह सारा कल्पना-विलास ही है। बहुविध संगीत-नाटक के लिए पूर्ण रंगमंच की आवश्यकता है और आज इसे कल्पना के आधार पर ही पूरा किया जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ

भरत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi